विवेकशिखा

रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

१ अक्टूबर-दिसम्बर — १९८२ अंक — १०-१२

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत अंक को तीन महीनों (अक्टूबर, नवम्बर और दिसम्बर) के संयुक्तांक के रूप में उपस्थित करते हुए हम वस्तुतः हार्दिक संकोच और ग्लानि का अनुभव कर रहे हैं। बड़ी भीषण एवं विषम परिस्थितियों के कारण हम इन अंकों को अलग-अलग प्रत्येक माह निकालने में समर्थ नहीं हो सके। सारे पटने में चलने वाली प्रेस-कर्मचारियों की लम्बी हड़ताल और हड़ताल टूटने के उपरान्त छपाई की दर में होने वाली प्रायः दुगुनी वृद्धि ने हमें किंकर्तव्य विमूढ़ता की अवस्था में रख दिया। हम परिस्थितियों से उबरने का हर सम्भव प्रयास करते रहे, किन्तु स्थिति की भयावहता को प्रभु की इच्छा मानकर हमें मौन हो जाना पड़ा। हमें विश्वास है, हमारे प्रिय एवं सहृदय पाठक इसके लिए क्षमा कर हमें पूर्व की भाँति अपना प्रेम प्रदान करते रहेंगे।

—प्रकाशक

इस अंक में

१.	श्रीरामकृष्ण ने कहा है	
२.	निर्वाण षट्कम्	श्रीशंकराचार्य
३.	डरो मत अरे अमृत संतान	(सम्पादकीय सम्बोधन)
४.	परमहंस श्रीरामकृष्ण देव एवं अद्वैत भाव	उमेश चन्द्र
५.	स्वामी अभेदानन्द	देव आनन्द मधुकर
६.	श्रीसारदा देवी (जीवनकथा)	स्वामी वेदान्तानन्द
७.	दिव्य योजना	राम नगीना सिंह 'विकल'

उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१ अक्टूबर—दिसम्बर (संयुक्तांक) १९८२ अंक—१०—१२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :

डॉ० केदारनाथ लाभ

सम्पादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

बिहार

सहयोग राशि

षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५० रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि सम्पादकीय कार्यालय केपते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

विषयी पुरुषों का मन गोबर के कीड़े की भाँति होता है। यह कीड़ा गोबर में ही रहना अधिक पसन्द करता है। यदि गोबर छोड़कर उसे और कुछ भी दिया जाय तो उसे पसन्द नहीं आता। यदि जबर्दस्ती से उसे कुछ दिया भी जाय, तो भी उसे अच्छा नहीं लगता। यदि वह गोबर की जगह पद्म में रख दिया जाय, तो छटपटाया करता है। विषयी पुरुषों का मन इसी प्रकार विषय-वासना की बातों के सिवाय अन्य किसी प्रकार की बातों में नहीं लगता। यदि ईश्वरी कथा उन्हें बतलायी जाय, तो वे उस स्थान को त्याग कर जहाँ विषय की बातें होती हैं, वहाँ चले जाते हैं।

(२)

बद्ध सांसारिक जीवों को किसी भी तरह होश नहीं होता। संसार के नाना दुःख कष्टों और विपत्तियों में पड़े रहने पर भी उनको चैतन्य नहीं होता। जिस प्रकार काँटेदार बबूल को खाते-खाते ऊँट के मुँह से घर-घर खून की धारा बहने लगती है, पर फिर भी वह काँटेदार बबूल खाना नहीं छोड़ता, उसी प्रकार सांसारिक पुरुष विषय-वासना का अत्यन्त दुःख-कष्ट भोगने पर भी विषय-वासना के लालच को नहीं छोड़ता।

(३)

एक सेर दूध में यदि केवल एक छँटाक पानी मिला हो, तो थोड़ी आँच में ही खोआ बनाया जा सकता है; परन्तु एक सेर में यदि तीन पाव पानी हो, तो आसानी से खोआ नहीं बन सकता, बहुत लकड़ी और आँच की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, बालक के मन में विषय-वासना बिल्कुल कम होने के कारण उसका मन ईश्वर की ओर सरलतापूर्वक ढल जाता है। परन्तु बूढ़ों में विषय-वासना खूब ठूँस-ठूँस कर भरी रहने के कारण उनका मन ईश्वर की ओर नहीं जा सकता।

श्रद्धांजलि

देव आनन्द मधुकर / अविनाश गौतम

देव आनन्द मधुकर। यानी अविनाश गौतम। विवेक शिखा के पाठक अविनाश गौतम के नाम से, उनकी प्रकाशित रचनाओं के कारण परिचित हैं। ये अविनाश गौतम थे देव आन्द मधुकर।

एक पच्चीस-तीस वर्षों का युवक। दुबला-पतला छरहरा वदन। तेज और मेधा से उद्दीप्त मुख-मंडल। शरत्-भोर की भाँति चमकती निर्दोष अरुणाभ, आकर्षक आँखें। शिष्टता और शालीनता की प्रतिमूर्त्ति। कर्मठता और अभिक्रम का विग्रह। कल्पना और यथार्थ का संगम। सेवा और सहयोग भाव की समन्वित ज्योति-रेखा—कुछ ऐसी ही छवि थी देव आनन्द मधुकर की, जिन्हें हम प्यार से 'मधुकर जी' कहा करते थे।

मधुकर जी अपने अवकाश-प्राप्त एक प्रचार्य पिता के इकलौते पुत्र थे। वचपन से ही मेधावी। मैट्रिक की परीक्षा में, उत्तर बिहार के परीक्षार्थियों में सर्वाधिक अंक प्राप्त कर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। आइ-एस० सी० में भी प्रथम श्रेणी पायी। बी-एस.सी. में प्रथम स्थान पाया। फिजिक्स में एम-एस. सी. किया और आ गये भारतीय स्टेट बैंक की सेवा में। पिछले वर्ष राजेन्द्र कालेज कैम्पस, शाखा छपरा के शाखा प्रबन्धक के रूप में आये।

सीधा-सादा सात्विक जीवन। अविवाहित। स्वयं अपना खाना पकाते। अपने कर्त्तव्य के प्रति सदा जागरूक। अपने सहयोगियों के प्रति स्नेहशील और सबके लिए आदर के भाव से युक्त। सबके बीच स्नेह सम्मान की दृष्टि से देखे जाते।

मधुकर भगवान रामकृष्ण के भक्त और उपासक थे। विवेकदीप के प्रथम अंक के सह-सम्पादक हुए। फिर कुछ कारणों से सम्पादक मंडल से हट गये लेकिन सदैव पहले विवेकदीप और वाद में विवेकशिखा को अपनी सेवाएँ देते रहे। कई व्यक्तियों की सहयोग राशि स्वयं देकर, उन्हें विवेक शिखा का ग्राहक बनाया। छपरे में रामकृष्ण आश्रम की स्थापना के लिए वे प्रयत्नशील थे। लेकिन अचानक अकस्मात ..बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से इसी ९ अक्टूबर के प्रातः वे अपने निवास में मृत पाये गये। पुलिस इसे आत्महत्या कहती है, जनता हत्या। सत्य क्या है—प्रभु जानते होंगे। मृत्यु का कोई विधान, कोई नियम नहीं होता। किन्तु प्रशासन को सत्य का पता लगाने का हर संभव प्रयास तो करना चाहिए।

मधुकर जी की, विवेक शिखा के लिए प्रेषित कई रचनाएँ, अब भी हमारे पास हैं। हम उन्हें क्रमशः प्रकाशित करेंगे।

देव आनन्द मधुकर की आत्मा की शाश्वत शान्ति के लिए विवेक शिखा-परिवार प्रभु से प्रार्थना करता है और अर्पित करता है मधुकर को शोकाकुल हृदय से अपनी श्रद्धांजलि।

निर्वाणषट्कम्

—शंकराचार्य

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे ।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायु—
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।१

न च प्राणसंज्ञो न वै पंचवायु—
र्न वा सप्तधातुर्न वा पंचकोषाः ।
न वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायू
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।२

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्य भावः ।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष—
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।३

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मंत्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।४

न मृत्युर्न शंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म ।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य—
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।५

अहं निर्विकल्पो निराकार रूपो
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् ।
न चासंगतं नैव मुक्तिर्न मेय—
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।६

भावार्थ : मैं मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त नहीं हूँ । कान और जीभ भी नहीं हूँ; न नाक और आँख ही हूँ । आकाश और क्षिति नहीं हूँ । अग्नि नहीं हूँ, वायु नहीं हूँ । मैं ज्ञान और आनन्दस्वरूप शिव हूँ, मैं शिव हूँ ।१

मैं पंच प्राण नहीं, पंच वायु नहीं, सप्तधातु नहीं, पंच कोष नहीं, वागिन्द्रिय, हाथ और पैर नहीं, जननेन्द्रिय और मलद्वार नहीं हूँ; मैं ज्ञान और आनन्दस्वरूप शिव हूँ, मैं शिव हूँ ।२

मेरा अनुराग-विराग नहीं है, न मेरा लोभ और मोह है । मेरा अहंकार और मात्सर्य नहीं है; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष भी नहीं है । मैं ज्ञान और आनन्दस्वरूप शिव हूँ, मैं शिव हूँ ।३

(मेरा) पुण्य, पाप, सुख, दुःख, मंत्र, तीर्थ, वेदपाठ और यज्ञ नहीं है । मैं भोजन नहीं हूँ, न भोज्य हूँ न भोक्ता । मैं चिदानन्दरूप शिव हूँ । मैं शिव हूँ ।४

मृत्यु, भय और जाति भेद—ये मेरे नहीं हैं । न मेरा पिता है न माता और न मेरा जन्म ही है । मेरा कोई बन्धु, मित्र, गुरु और शिष्य भी नहीं है । मैं तो चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ । मैं शिव हूँ ।५

मैं निर्विकल्प, निराकारस्वरूप एवं सर्वव्यापी कहाकर सर्वत्र विद्यमान हूँ । मैं इन्द्रिय समूहों के साथ जुड़ा नहीं हूँ । मैं मुक्ति नहीं हूँ, ज्ञेय भी नहीं हूँ । मैं चिदानन्दरूप शिव हूँ । मैं शिव हूँ ।६

सम्पादकीय सम्बोधन

डरो मत अरे अमृत सन्तान

मेरे आत्मास्वरूप मित्रो,

एक मित्र ने अपने एक पत्र में मुझे लिखा है—'सांसारिकता में जकड़ गया हूँ, और अब हालत यह हो गयी है कि उससे मुँह फेर कर अध्यात्म में जाने से डर लगता है कि कहीं और न कमजोर हो जाऊँ।' मित्र यह वीर है। उसमें कम-से-कम इतना साहस तो है कि वह जो अनुभव कर रहा है उसे वह बेलाग कह दे। कमोबेश हम सब की यही हालत है। हम सब डर रहे हैं—अध्यात्म में प्रवेश करने से, और हम तो इसे कहना भी नहीं चाहते, कबूल भी नहीं करते। कहने को तो हम धर्म का ढोल पीटने को चौबीसो घंटे तैयार बैठे हैं। शब्दों से अध्यात्म की चर्चा करने का कोई अवसर हम खोना नहीं चाहते। मगर धर्म से हम कोसों दूर हैं। हमारी यही मुसीबत है। भारतीयों की यही मुसीबत है। ट्रेन में, बस में, स्टीमर में, अपने ड्राइंग रूम में, स्टेशन के प्लेटफार्म पर या राह चलते जब जिसे मौका मिल जाता है धर्मोपदेश देने लगता है। अध्यात्म के किसी गूढ़ तत्त्व की व्याख्या करने लगता है। ऐसा लगने लगता है उसके वचनों को सुनकर कि यह सर्वारम्भ परित्यागी, समाहित चित्त वाला कोई ज्ञान को उपलब्ध हो चुका प्राणी है। लेकिन नहीं, धर्म-चर्चा को उसने मुखौटा बनाया है। अपने चेहरे पर एक और चेहरा लगा रखा है—प्रतिष्ठा के लिए, आदर के लिए, श्रद्धा के लिए, समाज में अपनी एक विशिष्ट पहचान बना लेने के लिए। यह भी उसके विभिन्न भोगों में एक भोग का साधन है। विवेक चूड़ामणि में शंकराचार्य ने कहा है—

वीणाया रूपसौन्दर्यं तंत्रीवादनसौष्ठवम्।
प्रजारंजनमात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते॥
वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये॥ (५९-६०)

अर्थात् "जिस प्रकार वीणा का रूप-लावण्य तथा तंत्री को बजाने का सुन्दर ढंग मनुष्यों के मनोरंजन का ही कारण होता है, उससे कुछ साम्राज्य की प्राप्ति नहीं हो जाती, उसी प्रकार विद्वानों की वाणी की कुशलता, शब्दों की धारावाहिकता, शास्त्र-व्याख्यान की कुशलता और विद्वत्ता भोग का ही कारण हो सकती हैं, मोक्ष का नहीं।"

लेकिन पत्र-लेखक मित्र साहसी है। उसने कबूल किया है कि संसार की ओर पीठ और ईश्वर की ओर मुँह करने में डर लगता है। उसे लगता है, कहीं यह पलायन तो नहीं होगा! कहीं यह उसे कमजोर तो नहीं बना देगा! इसीसे वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया है। मित्र का साहस वास्तविक साहस नहीं है। उसमें सच्ची साहसिकता नहीं। उसकी बातों में जो साहस दिखाई पड़ता है वह गहरे में उसके मोह पर पड़ा मानो एक मुलायम आवरण, एक रेशमी चादर मात्र है। वह जिसे अपना मान बैठा है, उससे बिछुड़ने का साहस जुटा नहीं पाता—मोहवश, और कहता है कि ईश्वर की ओर जाने से कमजोर हो जाऊँगा।

अर्जुन भी युद्ध से भयभीत था। लेकिन उसने अपने भय को बड़े सुन्दर और मनोरम शब्दों से आवृत्त कर कृष्ण के सम्मुख तर्क प्रस्तुत किये थे। कितनी अच्छी बात उसने कही कृष्ण से कि "हे कृष्ण! मैं विजय नहीं चाहता, न राज्य तथा सुखों को ही चाहता हूँ। हमें राज्य से क्या प्रयोजन है अथवा भोगों और जीवन से भी क्या प्रयोजन है? क्योंकि हमें जिनके लिए राज्य, भोग

और सुख आदि की इच्छा है, वे ही (दादा, मामा, ससुर पोते, साले आदि) यह धन और जीवन की आशा का परित्याग कर युद्ध में खड़े है।" (गीता १/३३-३४) लेकिन कृष्ण थे सच्चे गुरु। अर्जुन की कमजोरी पकड़ ली। उसके मोह से उत्पन्न विषाद और भय को भाँप लिया और कहा—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिता: ॥ (गीता २/११)

अर्थात् हे अर्जुन ! एक ओर तो जो शोक करने योग्य नहीं है उसके लिए तू शोक करता है और दूसरी ओर पंडितों की तरह वचन बोलता है। जान ले, जो गत हो गये हैं और जो गत नहीं हुए हैं उनमें से किसी के लिए भी पंडितगण (बुद्धिमान प्राणी) शोक नहीं करते।

हमलोग बड़े चतुर प्राणी हैं। जो कुछ करना चाहते हैं उनके लिए एक तर्क, एक नीति, एक न्याय प्रस्तुत कर उसका औचित्य सिद्ध कर देते हैं। हमारा हर कार्य, चाहे वह हमारी दृष्टि में ठीक हो या न हो, समाज की दृष्टि में, संसार की दृष्टि में, उसे ठीक होना ही चाहिए। इसी के लिए एक तर्कजाल हम बुन डालते हैं, एक सिद्धान्त हम गढ़ लेते हैं और इस प्रकार अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखना चाहते हैं।

बन जाता सिद्धान्त प्रथम फिर
पुष्टि हुआ करती है,
बुद्धि उसी ऋण को सब से ले
सदा भरा करती है।

× × ×

और सत्य ! यह एक शब्द तू
कितना गहन हुआ है,
मेधा के क्रीड़ा-पंजर का
पाला हुआ सुआ है।

जिसे हम सत्य कहकर सिद्ध करना चाहते हैं वह मात्र हमारी बुद्धि की क्रीड़ा का, मेधा के विलास का पालतू तोता ही तो है !

मित्र घर छोड़ना चाहता नहीं मोहवश और कहता है ईश्वर की ओर जाने से कमजोर हो जायगा। यही डर है।

डर मनुष्य की कमजोरी है। भय मनुष्य की दुर्बलता है। हम सब किसी न किसी स्तर पर डरे हुए प्राणी हैं। यदि केवल ईश्वर की ओर मुड़ने में भय होता तो एक बात थी। हम और स्तरों पर तो अभय में रहते ! और अगर अभय में रहते तो शान्त रहते। और अगर शान्त होते तो सुखी होते। अशान्तस्य कुत: सुखम्। शान्ति रहित प्राणी को सुख कैसे हो सकता है ? लेकिन स्थिति यह है कि मनुष्य तो मनुष्य, संसार के सारे जीव भय में स्थित हैं। श्रुति कहती है—

भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्य: ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचम: ॥ (कठोपनिषद्)

अर्थात् भय से ही आग दहकती है, भय के कारण ही सूर्य तप रहा है। इन्द्र वायु और यम सब भय के कारण ही अपनी-अपनी सीमा में पड़े प्रकम्पित हो रहे हैं।

जरा हम सोंचे तो ! भय ने हमारी क्या दशा कर रखी है ! कोई अपने पद से भयभीत है, कोई अपने यश से। कोई अपने ज्ञान से भयभीत है, कोई अपने अज्ञान से। कोई अपने पति से भयभीत है, कोई अपनी पत्नी से। कोई समाज से डर रहा है, कोई शासन से। जनता शासक से डर रही है, शासक जनता से। चारो ओर भय का साम्राज्य है। शिक्षक डर रहा है, विद्यार्थी डर रहा है, पंडित डर रहा है, पुरोहित डर रहा है, पुजारी डर रहा है। जुआरी और शराबी को तो बात ही क्या ! और मजे की बात भय की यह होती है कि जो जितना ही भयभीत होता है वह औरों को उतना ही भयभीत करता है। जो भी आपको डराता हो, आप समझ लें, वह स्वयं कहीं न कहीं से बड़ा डरा हुआ प्राणी है। बड़ा भयभीत है। बसों को रोककर यात्रियों को लूटने वाला, ट्रेन के डब्बों में डकैती करने वाला, विश्वविद्यालय में घुस कर किसी छात्र को गोली दाग देने वाला, किसी लड़की के साथ बलात्कार करने वाला और जाति या

धर्म के नाम पर दंगे, बलवे या उपद्रव करने वाला, चुनावों में बूथों पर कब्जा करने वाला—इनमें से हर कोई डरा हुआ प्राणी है। भय में है, इसीसे अपने भय को आवरण देने के लिए औरों को भयभीत कर रहा है। एक लम्बी शृंखला भय से खड़ी हो जाती है—

भयभीत सभी को भय देता भय की उपासना में विलीन,
प्राणी कटुता को बाँट रहा जगती को करता अधिक दीन।

यह पृथ्वी बड़ी दयनीय, बड़ी दीन हो गयी है क्योंकि यह भयभीतों से भर गयी है। भय के कारण ही यह नरक बन गयी है। यह स्वर्ग हो जाती, अगर यह भय मुक्त प्राणियों से सजी-सँवरी होती!

मैंने एक कहानी कभी सुनी थी। अकबर ने एक दिन अकारण भरे दरबार में बीरबल को एक तमाचा जड़ दिया। सम्राट् था अकबर। बड़े-बड़े युद्ध उसने जीते थे। बड़ी ताकत थी उसको। किसकी परवाह थी उसे? मौज में आकर उसने बीरबल के गाल पर एक चाँटा खींच दिया। बीरबल हकबक! अकेले में, एकान्त में यह चाँटा लगा होता तो खैर कोई बात न होती। मगर भरी सभा में, भरे दरबार में, यह बेइज्जती सही नहीं गयी उसे। इच्छा हुई कि बदले में एक चाँटा जड़ दे अकबर को। मगर डर गया। अपनी हैसियत का ख्याल आया उसे। अकबर सम्राट् था। तो उसने एक तरकीब निकाली अपने अपमान का बदला लेने की। उसने अपनी बगल में खड़े एक दूसरे वजीर को जोरों से एक चाँटा लगा दिया। फिर क्या था! वजीर ने भी एक तीसरे को चाँटा मार दिया! और इस तरह दरबार में जितने आदमी थे सबको किसी न किसी ने चाँटा मार दिया। बेवजह चाँटा मारने का एक सिलसिला खड़ा हो गया। एक का भय दूसरे को भयातुर करता है—'भयभीत सभी को भय देता भय की उपासना में विलीन।'

आखिर हम क्यों भयभीत होते हैं? भय के मूल में है क्या? क्यों हमें किसी से डर होता है?

भय के मुख्यतः दो कारण हैं—द्वैत-दृष्टि का होना तथा आसक्ति में जीना।

जहाँ द्वयता है, वहाँ भय है।
जहाँ भेद-बुद्धि काम करती है, वहाँ भय है।
जहाँ अपने-पराये का बोध है, वहाँ भय है।
जहाँ आसक्ति है, वहाँ भय है।
और जहाँ भय है, वहाँ अशान्ति है।
और जहाँ अशान्ति है, वहाँ दुःख है।
और जहाँ दुःख है, वहीं मृत्यु है।

एक प्रसिद्ध उक्ति है—'द्वितीयाद्वै भयं भवति, अद्वैतमेव अभयम्।' अर्थात् द्वैत से भय उत्पन्न होता है; अद्वैत ही वस्तुतः अभय है।' जहाँ अपने-पराये का ज्ञान रहता है वहीं द्वैत भाव रहता है। यह पत्नी 'अपनी' है। यह पुत्र 'अपना' है। 'मेरी' माँ है। यह 'मेरा' पिता है। यह शरीर 'मेरा' है। यह धन 'मेरा' है। बाकी सब दूसरों के हैं। बाकी सब दूसरे हैं। यह दृष्टि हममें संकीर्णता उत्पन्न करती है। फिर हम अपनों की रक्षा के लिए सचेष्ट हो जाते हैं। दूसरों की या तो चिन्ता नहीं करते या फिर पहले अपनी चिन्ता करने के उपरान्त दूसरों को देखते हैं। जब तक यह भाव रहेगा हम भय से उबर नहीं सकते।

यह शरीर अपना है, कहीं इसका अनिष्ट न हो जाय! हम डर जाते हैं। यह अपनी पुत्री, पिता, धन आदि हैं। कहीं इनका अहित न हो जाय! हम डर जाते हैं। वह शत्रु है। हम उससे डर जाते हैं। वह लुटेरा, हत्यारा, आततायी है। हम डर जाते हैं। हमने यह जाना ही नहीं कि हम शरीर नहीं हैं। हम आत्मा हैं—शुद्ध, अजर, अमर, चिन्मय, आत्मा। और जो आत्मा हममें है, वही सभी जीवों में है। एक ही आत्मा की किरण-डोर में हम सभी गुँथे हैं। यहाँ न कोई अपना है न कोई पराया। 'मैं' ही सब में हूँ और सब 'मुझमें' हैं। फिर किसका और क्यों भय? केवल दृष्टि पलट देने की बात है। अलग अलग देखें तो भय, एकत्व देखें तो अभय। ये पेड़-पौधे, पर्वत-नदियाँ, पशु-पक्षी—सबमें मैं हूँ, सब में मेरी ही चेतना है, मेरा ही स्वर है, मेरा ही संगीत है। मैंने सुना है स्वामी विवेकानन्द जी जब अमेरिका में थे

तब किसी सभा में एक पादरी ने उनसे कहा था—'स्वामी जी, अभी यदि मैं आपको एक चपत खींच दूँ तो कैसा होगा ?' स्वामी जी ने थोड़ी देर चुप रह कर कहा —'अगर यह बात तुम किसी दूसरे को कहते तो संभव है, वह भाग खड़ा होता। लेकिन मैं नहीं भागूँगा। मैं जानता हूँ कि तुम्हारी आँखें मेरी आँखें हैं, तुम्हारे कान मेरे ही कान हैं, तुम्हारी नाक मेरी नाक है, तुम्हारे होंठ मेरे होंठ हैं, और तुम्हारे हाथ मेरे ही हाथ हैं। चूँकि अपना हाथ अपने गाल पर चपत नहीं चलाता, अतः मेरा वह हाथ (पादरी के हाथों की ओर संकेत करते हुए) मेरे इस गाल (अपने गालों की ओर इशारा करते हुए) पर चपत नहीं लगा सकता।' पादरी निरुत्तर हो कर उनके गले से चिपक गया। यह है अद्वैत भाव। यह है अभय का रहस्य। यह है समत्व-दृष्टि में जीने की कला।

यह अद्वैत मनुष्य को निरहंकृत करता है। मनुष्य के चित्त को विस्तार देता है। उसे अपने शुद्ध रूप में प्रतिष्ठित करता है।

जहाँ अद्वैत है, वहाँ अहंकार नहीं है।
जहाँ अहंकार नहीं है, वहाँ कोई घृणा, द्वेष
या क्रोध नहीं है।
जहाँ घृणा, द्वेष और क्रोध नहीं है, वहाँ प्रेम है।
प्रेम ही हमारा स्वरूप है।
और प्रेम और भय साथ-साथ नहीं चलते।

जो अद्वैत में है, वही प्रेम में है। जो प्रेम में है, वही ईश्वर में है। जो ईश्वर में है, वह अभय में है।

इसलिए अद्वैत में रहने वाला, सत्य में भी रहता है। अद्वैत में रहने वाला, अहिंसा में भी रहता है। अद्वैत में रहने वाला, शुभाशुभ परित्यागी और निन्दा-स्तुति, मान-अपमान सब में समभाव से रहता है। गीता के ये दो श्लोक बड़े सार पूर्ण हैं—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्
विनश्यत्स्व विनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥
१३/२७

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥
१३/ ८

अर्थात् "विनाश होनेवाले सब भूतों में जो लोग अविनाशी परमात्मा को स्थित देखते हैं, यथार्थ में उन्हीं का देखना सार्थक है, क्योंकि, ईश्वर को सर्वत्र समान भाव से देखकर वे आत्मा के द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करते इसलिए वे परमगति को प्राप्त होते हैं।"

जो सम-दृष्टि रखेगा वह किसकी हिंसा करेगा ? वह किससे घृणा करेगा ? वह किससे डरेगा ? उससे भिन्न और अलग है कौन ? संत और महात्मा इसीसे अभय में जीते हैं।

अतएव, जो सर्वत्र, सदैव और सबमें एक ही अविनाशी परमात्मा का समभाव से दर्शन करता है वह किससे घृणा करेगा, किससे द्वेष करेगा, किस पर क्रोध करेगा और किससे भयभीत होगा ?

एक बात पर हम और विचार करें। सारे भयों की जड़ में मृत्यु कहीं न कहीं छिपी रहती है। मृत्यु से बड़ा भय और कोई नहीं। हम अपने अधिकारी से सच्ची बातें क्यों नहीं कह देते ? डर होता है। सच तो क्या, कभी-कभी उसकी नाजायज बातों का उत्तर तक नहीं देते। क्यों ? डर से। किसी ने कहा है—

हम बहुत कुछ चाहते कहना मगर कहते नहीं
बोलना ही जुर्म है, सच बोलना तो दर किनार।

बोलना ही जहाँ जुर्म हो वहाँ कोई सच कैसे कहेगा ? सच कहने में डर है। अधिकारी से सच कह दो, नाराज हो जायगा। नौकरी खा जायगा। फिर पैसे नहीं आयेंगे। पैसे नहीं होंगे तो घर के लोग भूखों मरेंगे। मृत्यु ! इसी डर से हम सच-सच बात नहीं करते। लेकिन अद्वैत में रहनेवाला मृत्यु से डरता नहीं, मृत्यु को प्यार करता है। जो संसार में रहते हैं, भोग-वासना में रहते हैं, वे जीवन को या शरीर को प्यार करते हैं। जो ईश्वरोन्मुख रहते हैं या अद्वैत में होते हैं वे मृत्यु को प्यार करते हैं। मृत्यु को प्यार करने का अर्थ आत्म हत्या या हत्या करना नहीं है। तो फिर मृत्यु को प्यार करने का क्या अर्थ है ?

स्वामी विवेकानन्द का कथन है—"हम यह निश्चित जानते हैं कि हम एक न एक दिन अवश्य मरेंगे और जब ऐसा है तो फिर किसी सत्कार्य के लिए ही हम क्यों न मरें ! हमें चाहिए कि हम अपने सारे कार्यों को, जैसे खाना पीना, सोना, उठना, बैठना आदि सभी—आत्मत्याग की ओर लगा दें। भोजन द्वारा तुम अपने शरीर को पुष्ट करते हो, परन्तु उससे क्या लाभ हुआ, यदि तुमने उस शरीर को दूसरों की भलाई के लिए अर्पण न किया ? इसी प्रकार तुम पुस्तकें पढ़कर अपने मस्तिष्क को पुष्ट करते हो, परन्तु उससे भी कोई लाभ नहीं, यदि समस्त संसार के हित के लिए तुमने उस मस्तिष्क को लगाकर आत्म-त्याग न किया। चूँकि सारा संसार एक है और तुम इसके एक अत्यंत अकिंचन अंश हो इसीलिए केवल इस तुच्छ स्वयं के अभ्युदयार्थ यत्न करने की अपेक्षा यह श्रेष्ठ है कि तुम अपने करोड़ों भाइयों की सेवा करते रहो। .....इस प्रकार धीरे-धीरे मृत्यु को प्राप्त हो जाओ। ऐसी ही मृत्यु में स्वर्ग है, उसी में सारी भलाई है। और इसके विपरीत समस्त अमंगल तथा नरक है।"

(विवेकानन्द साहित्य : पंचम खंड : पृ० ३३६-३७)

जो मृत्यु को प्यार करना नहीं जानता,
वह अभय में नहीं रह सकता।
जो त्याग के भाव में दीक्षित नहीं,
वह अभय में भी नहीं हो सकता।
जो सत्य और अहिंसा में नहीं होगा,
वह अभय में भी नहीं होगा।
जो नित्य-प्रेम में अवस्थित नहीं होगा,
वह अभय में भी नहीं होगा।

त्याग, सत्य, अहिंसा और प्रेम—ये अभय के चार स्तंभ हैं। इनके बिना अभय नहीं आता और इन चारों के मूल में है अद्वैत-दृष्टि।

एक बात और है। अभय के लिए, डर से मुक्त होने के लिए मनुष्य को व्यक्ति, वस्तु और स्थितियों के प्रति अनासक्त, विरक्त और निर्मम होना होगा। भर्तृहरि का कथन है—'सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्य-मेवाभयम्।' अर्थात्—'इस संसार की सारी वस्तुएँ भय से भरी हैं। केवल वैराग्य के द्वारा ही इस भय से बचा जा सकता है। इस वैराग्य से ही मनुष्य निर्भय हो सकता है, अभय में प्रतिष्ठित हो सकता है। वैराग्य एक भाव है, एक दृष्टिकोण है, एक बोध है—जीवन और जगत् को देखने का। यह कोई क्रिया नहीं है, कोई चेष्टा या आयास-प्रयास नहीं है। यह है जीवन और जगत् के प्रति असंगता, निस्संगता या अनासक्ति की दृष्टि। हम संसार में रहकर भी, समाज में रहकर भी, घर-परिवार में रहकर भी, मित्र, पति, पत्नी और बच्चों के बीच रहकर भी, इन सबके प्रति स्नेहमय, प्रीतिमय और आदरमय रहकर भी, अपने अंतर्मन से इनमें से किसी के प्रति भी आसक्त नहीं हैं—यह है वैराग्य। इसके लिए घर छोड़ने की आवश्यकता नहीं, जंगल या पहाड़ जाने की जरूरत नहीं। हम घर में भी वैरागी बनकर रह सकते हैं और वन में भी गृही बने रह सकते हैं। अगर संसार हमारे मन में बसा है तो जंगल में भी वह संसार हमारा पिंड नहीं छोड़ेगा। और संसार हमारे मन में नहीं समाया है तो घर भी वन-कानन ही है। अतः, संसार छोड़ना क्या ? हम संसार में रहें, संसार हममें न रहे—यह है वैराग्य।

संसार के प्रति, घर-परिवार के प्रति, देश और समाज के प्रति जो करणीय कर्म हैं उन्हें ईश्वर की पूजा मानकर पूरी निष्ठा, किन्तु निष्कामता से करते चलना वैरागी की पहचान है। जैसे सुगंध सबसे लिपटती है, सिमटती किसी में नहीं, जैसे हवा छूती तो सबको है, मगर ठहरती किसी के समीप नहीं, जैसे चाँद और सूरज की किरण अपने प्रकाश के आँचल से सहलाती तो सबको है, किन्तु किसी की बाँहों में समाती नहीं, उसी प्रकार वैरागी सबको अपने स्नेह और प्रेम और कर्त्तव्य की शीतल मंदाकिनी में नहा-बहाकर भी स्वयं सबसे अलिप्त रहता है। और जो अलिप्त रहता है, अनासक्त रहता है वही अभय में भी रहता है।

मेरे मित्र को संसार से भागने में और ईश्वर की ओर होने में भय लगता है। भय लगेगा ही। जब हम संसार

और ईश्वर को दो मानेंगे, संसार छोड़ने में भय लगेगा। जब हम संसार और ईश्वर में अभेद देखेंगे तब संसार का त्याग करने में भय नहीं लगेगा। लेकिन तब संसार छोड़ने की जरूरत ही क्या रहेगी? तब संसार छोड़कर हम जायेंगे ही कहाँ? जरूरत संसार छोड़ने की नहीं, संसारत्व छोड़ने की है, संसारीपन छोड़ने की है। भय संसार से नहीं, संसारी होने से है। भय सांसारिकता में है। श्री-रामकृष्ण ने संसार नहीं छोड़ा। लेकिन वे संसारी कभी नहीं हुए। बुद्ध और जीसस ने संसार छोड़ा, मगर लौटकर फिर संसार में आये—असंसारी होकर। जब संसार और ईश्वर अलग-अलग नहीं दीख पड़ेंगे तब पत्नी भवतारिणी लगेगी और पति साक्षात् शिव लगेंगे। तब हर पुरुष शंकर और हर नारी पार्वती लगेगी। तब वासना और भोग और आसक्ति रहेगी कहाँ? तब संसार छोड़ेंगे ही क्या पाने को? केवल दृष्टि बदल देने की बात है, जरूरत है।

जहाँ वासना और भोग है, वहाँ भय है।
जहाँ आसक्ति और मोह है, वहाँ भय है।
जहाँ तृष्णा और कामना है, वहाँ भय है।

अनासक्ति और निष्कामता में अभय है। इसी अभय में होने की जरूरत है। अभय में हुए बिना ईश्वर को भी हम नहीं प्राप्त कर सकते—नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। इसीसे स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने एक शिष्य से कहा था—'इस जीवन में जो सर्वदा हताशचित्त रहते हैं, उनसे कोई भी कार्य नहीं हो सकता। वे जन्म-जन्म 'हाय, हाय' करते हुए चले आते हैं और चले जाते हैं। 'वीरभोग्या वसुन्धरा', अर्थात् वीर लोग ही वसुन्धरा का भोग करते हैं—यह वचन नितान्त सत्य है। वीर बनो, सर्वदा कहो 'अभीः' 'अभीः'—मैं भयशून्य हूँ, मैं भयशून्य हूँ। सबको सुनाओ, 'माभैः' 'माभैः' भय न करो, भय न करो। भय ही मृत्यु है, भय ही पाप, भय ही नरक, भय ही अधर्म तथा भय ही व्यभिचार है। जगत् में जो कुछ असत् या मिथ्याभाव (Negative thoughts) हैं, वह सब इस भय रूप शैतान से उत्पन्न हुआ है। इस भय ने ही सूर्य के सूर्यत्व को, वायु के वायुत्व को, यम के यमत्व को अपने अपने स्थान पर रख छोड़ा है, अपनी सीमा से किसी को बाहर नहीं जाने देता।..... जिस दिन इन्द्र, चन्द्र, वायु, वरुण भय-शून्य होंगे, उसी दिन सब ब्रह्म में लीन हो जायेंगे—सृष्टि रूप अध्यास का लय साधित होगा। इसीलिए कहता हूँ 'अभीः' 'अभीः'। (विवेकानन्दजी के संग में : पृ० १५२-५३)

यही अभय हमारी चेतना को विस्तार देता है। इसके अभाव में ही हम जीवन का पूरा रस पी नहीं पाते, अपने अन्तर का वसन्त जगत् में लुटा नहीं पाते और अन्त में इस वेदना के साथ मर जाते हैं कि हम अपनी विराटता को छोड़ लघुता में ही सारी जिन्दगी जीते रह गये—

रस तो अनन्त था, अँजुरी भर ही पिया
जी में वसन्त था, एक फूल ही दिया;
मिटने के दिन आज, मुझको यह सोच है
कैसे बड़े युग में कैसा छोटा जीवन जिया!

नहीं, हमें विराट् सत्ता से एकात्म होकर आनन्द के अशेष-अनन्त रस को पीना होगा, संसार में मधुमास का हास बिखेरना होगा, एक पूरी-की पूरी, एक नयी मधुऋतु लुटानी होगी, एक नयी रसगंगा बहानी होगी। और इसके लिए हमें अभय में जीना होगा, अद्वैत में विचरण कर एक नयी मधुगंध की धार बहानी होगी। संकीर्णता से लघुता से ऊपर उठना होगा और उदारता में, भूमा में संतरण करना होगा—

और यह क्या तुम सुनते नहीं, विधाता का मंगल वरदान
'शक्तिशाली हो, विजयी बनो', विश्व में गूँज रहा जय गान।
डरो मत अरे अमृत संतान! अग्रसर है मंगलमय वृद्धि
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र, खिंची आवेगी सकल समृद्धि।

तो मेरे मित्रो, हम अमृत की संतान हैं। हमें भय कैसा? अभीत भाव से इस जगत् में सर्वत्र और सदैव परमात्मा का अनुपम रूप-दर्शन करते हुए, उसकी मीठी संगीत-सुधा का पान करते हुए, उसके अपार आनन्द-सागर में डुबकियाँ लगाते हुए हम अपने और सबके जीवन को धन्य करने के लिए अभी से डेग क्यों न उठा दें? स्वयं अभय में प्रतिष्ठित होकर सबके लिए अभय का शंखनाद क्यों न निनादित कर दें? हम क्यों न मान लें कि हमारा कोई पाप-ताप नहीं है? और हम प्रभु की अपार करुणा के सामने पाप कर ही कितना सकते हैं? और जो कुछ भूलें हम से हुईं, वे विगत हो गयीं। हम अतीत की लाश अपने कंधों पर ढोने की शव-साधना क्यों करें? हम अभी से शुद्ध-बुद्ध-निरंजन हैं, निष्पाप हैं, निष्ताप हैं। हम अभीत हैं। हम इसी भाव में जीने की तैयारी करें।

भगवान् श्रीरामकृष्ण और स्वामीजी हमें शाश्वत अभय में प्रतिष्ठित करें, यही उनसे हमारी आन्तरिक प्रार्थना है। जय रामकृष्ण!

परमहंस श्री रामकृष्ण देव एवं अद्वैत भाव

—उमेश चन्द्र

परमहंस श्री रामकृष्ण देव माँ जगदम्बा के अनन्य उपासक थे। साधना की प्रारम्भिक अवस्था में माँ काली की उपासना एवं पूजा उनके अभूतपूर्व भक्तिभाव एवं साकार उपासना के प्रति उनकी अपूर्व श्रद्धा का द्योतक है। साकार उपासना के क्रम में वे इतने तल्लीन हो जाते कि उन्हें अपने शरीर की सुधबुध भी नहीं रहा करती थी। उन्हें माँ काली की प्रस्तर मूर्त्ति पूर्णतया चिन्मय प्रतीत होती थी। भक्तिभाव की इसी असीम विह्वलता से दक्षिणेश्वर स्थित माँ काली स्वतः चिन्मय स्वरूप में उनके समक्ष प्रकट होती थी। आध्यात्मिक पिपासा की अन्तहीन विह्वलता ने उन्हें साकार उपासना के चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। "मधुरभाव में सिद्ध होकर श्री रामकृष्ण भावसाधना की अन्तिम भूमिका में पहुँच गये थे। तदुपरान्त उनके मन में सर्व-भावातीत वेदान्तोक्त अद्वैतभाव की साधना करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। मधुर भाव की साधना के बाद अद्वैत भाव की ही साधना की इच्छा श्री रामकृष्ण को क्यों हुई? इस पर विचार करने से इसमें भी कोई हेतु दिखायी देता है। भावराज्य और भावातीत राज्य में परस्पर कार्य-कारण सम्बन्ध सदा दिखायी देता है; क्योंकि भावातीत अद्वैत राज्य का भूमानन्द ही मर्यादित बनकर भावराज्य मे दर्शनस्पर्शनादि सम्भोगजन्य आनन्द रूप से प्रकट हुआ करता है। इसी कारण मधुर भाव की पराकाष्ठा प्राप्त होने पर, भावराज्य की चरमसीमा तक पहुँच चुकने पर भावातीत अद्वैत भूमिका के अतिरिक्त उनका मन अन्यत्र कहाँ आकृष्ट होता?"[1]

भारतीय वाङ्मय में अद्वैत विचारधारा मानव की सर्वोत्कृष्ट खोज मानी जायेगी। "वेदान्त में अद्वैत वेदान्त ही सर्वापेक्षा कठिन एवं अमूर्त्त है। यह पूर्णरूप से द्वैत-की अस्वीकृति है। एकमात्र एक अनन्य सत्ता के अतिरिक्त कुछ नहीं है। चिन्मय, भगवान, असीम, अव्यय, ब्रह्म, आत्मा आदि उस परमतत्व के ही नाम हैं, क्योंकि उस सत्ता को अपने लक्षण में सहायता प्रदान करने के लिए किसी गुण की आवश्यकता नहीं है। इस लक्षण के लिए शंकर ने डेनिस दि एरियोपेजिट के समान केवल एक ही उत्तर दिया है 'नेति-नेति'। प्रत्येक प्रतीयमान वस्तु, हमारे मन तथा इन्द्रियानुभूति का जगत, यह सब एक भ्रान्ति (अविद्या) से समाच्छन्न अव्यय सत्ता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस अविद्या के प्रभाव से ही ब्रह्म नाना रूप व नाम धारण करता है—जो वास्तव में नास्तित्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस 'अहम्' माया मूर्त्तियों के विश्वप्लावन के नीचे जो एक मात्र अस्तित्व है वही सत्य सत्ता, परमात्मा है, जो एक है।"[2]

अद्वैत का यह एकमात्र युक्तियुक्त सिद्धान्त है कि "मैं एकमेव अद्वितीय आत्मा हूँ। समग्र ब्रह्माण्ड में एक ही सत्ता व्याप्त है। ज्यों ही एक अखण्ड सत्ता देश-काल-निमित्त के साये में पड़ती है त्यों ही उसे बुद्धि, अहंज्ञान, सूक्ष्म-भूत, स्थूल भूत आदि की संज्ञा दी जाती है। सभी प्रकार के भौतिक और मानसिक आकार अथवा रूप, जो कुछ इस जगत ब्रह्माण्ड में है वह वही एक वस्तु है—केवल विभिन्न रूप में प्रतिभासित मात्र हो रही है।"[3] जगत के उस अखण्ड स्वरूप को ही ब्रह्म की संज्ञा दी गयी है। ब्रह्म और जगत के एकत्व की पूर्ण मीमांसा जगद्गुरु शंकराचार्य ने अपनी लब्धप्रतिष्ठ पुस्तक 'विवेक चूड़ामणि' में की है :—

सदिदं परमाद्वैतं स्वरुपादन्यस्य वस्तुनोऽभावात्।
न ह्यन्यदस्ति किञ्चित्सम्यक्परमार्थतत्वबोधे हि ॥२२८
यदिदं सकलं विश्वंनानारूपं प्रतीतमज्ञानात्।
तत्सर्वं ब्रह्मैव प्रत्यस्ताशेषभावनादोषम् ॥ २२९ ॥[4]

---

१. श्री रामकृष्ण लीलामृत—द्वितीय भाग पृ० ५

२. रामकृष्ण परमहंस—मु० लेखक रोमां रोलां-अनु० धनराज विद्यालंकार पृ० ६१

३. धर्म विज्ञान—स्वामी विवेकानन्द पृ० ६७

४. विवेक चूड़ामणि—पृ० ७५

"यह परमाद्वैत ही एक सत्य पदार्थ है, क्योंकि इस स्वात्मा से अतिरिक्त कोई वस्तु है ही नहीं। इस परमार्थ तत्व का पूर्णबोध हो जाने पर और कुछ भी नहीं रहता। यह सम्पूर्ण विश्व, जो अज्ञान से नाना प्रकार का प्रतीत हो रहा है, समस्त भावनाओं के दोष से रहित अर्थात् निर्विकल्प ब्रह्म ही है।"

ब्रह्म की असीमता एवं सार्वभौमिकता के ही परिणाम-स्वरूप 'नेति नेति' कहकर श्रुतियों ने ब्रह्म का निरूपण किया है। आचार्य शंकर ने ब्रह्म की अलौकिक अनुभूति कर जीवन के अप्रतिम आनन्द-रस का पान किया। ब्रह्म की चिन्मयता, अपरिमित आनन्द लहरी का सुधापान कर ब्रह्माण्ड की उस महान सत्ता का चिन्तन 'विवेक चूड़ामणि' में जगद्गुरु ने इस प्रकार किया है :—

"इसलिए परब्रह्म सत्, अद्वितीय, विशुद्ध, विज्ञानघन, निर्मल, प्रशान्त, आदि-अन्त रहित, अक्रिय और निरन्तर आनन्दस्वरूप है। वह समस्त मायाकृत भेदों से रहित है, नित्य, मुक्तस्वरूप, कला रहित और प्रमाणादिका अविषय है तथा वह कोई अरूप, अव्यक्त अनाम और अक्षय ज्योति है जो स्वयं ही प्रकाशित हो रहा है। बुधजन उस परम तत्व को ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इस त्रिपुरी से रहित, अनन्त, निर्विकल्प और अखण्ड-चैतन्य मात्र जानते हैं। वह वहां तथा अथवा यह के अयोग्य, मन वाणी का अविषय, अप्रमेय आदि-अन्त रहित, परिपूर्ण तथा महान तेजोमय है।"[५]

श्री रामकृष्ण ने मधुर भाव की ही साधना अद्वैत-भाव की साधना के पूर्व की थी। श्रीरामकृष्ण ने विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के अनुसार साधना करने पर यह अनुभव किया कि अद्वैत अवस्था ही साधना की चरम परिणति है। अद्वैत भाव में स्थिर होना ही सब प्रकार के साधनभजनादि, का अन्तिम ध्येय है। परमहंस श्री रामकृष्ण कहा करते थे "ईश्वर की चरम परणति में स्वतः वह भाव साधक के जीवन में आकर उपस्थित होता है, समस्त मतों के अनुसार ही उसे अन्तिम बात समझनी चाहिए"[६]

परमहंस श्री रामकृष्ण ने अद्वैत भाव की उपासना पद्धति अपने गुरु श्री तोतापुरी से पायी। सन् १८६५ के अन्त में श्री जगन्नाथ जी की यात्रा करके वापस लौटते हुए परिव्राजक संन्यासी के रूप में स्वामी तोतापुरी दक्षिणेश्वर आये। स्वामी तोतापुरी ने निरन्तर चालीस वर्षों की साधना के बाद सिद्धि प्राप्त की थी। वे जीवनमुक्त थे। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म के सतत् ध्यान से निर्विकल्प समाधि प्राप्त की थी। स्वामी तोतापुरी सदैव ध्यानावस्थित ही रहा करते थे। निराकार ब्रह्म के उस उपासक ने अपने वेदान्त ज्ञान, चिरन्तन ध्यानाभ्यास एवं निर्विकल्प समाधि की आनन्दमयी ज्योत्सना से परमहंस रामकृष्ण को ध्यानाकृष्ट किया। स्वामी ने 'उन्हें अद्वैत वेदान्त के मुख्य सिद्धान्तों, एक अद्वितीय एवं अभिन्न ब्रह्म तथा किस प्रकार अहं के सन्धान में गंभीर में गोता लगाना होगा, जिससे कि ब्रह्म के साथ उसकी एकरूपता की उपलब्धि हो सके और समाधि के द्वारा उसे ब्रह्म में प्रतिष्ठित किया जा सके"[७] आदि की शिक्षा दी। अद्वैत भाव की गुरुदीक्षा लेकर श्री रामकृष्ण ने संन्यास-जीवन में प्रवेश किया। पंचवटी की पुण्य भूमि पर शिखा-सूत्र का यथाविधि होम देकर गुरु-प्रदत्त कौपीन एवं काषाय वस्त्र धारण कर गुरु के निदेशानुसार श्री रामकृष्ण ने निर्विकल्प समाधि में प्रवेश किया। गुरु की यह महत् कृपा थी एवं माँ जगदम्बा की प्रेरणा थी कि श्री रामकृष्ण निराकार ब्रह्म की साधना में एवं निर्विकल्प समाधि में लगातार तीन दिनों तक रहे। परमहंस श्री रामकृष्ण देव ने उन अविस्मृत क्षणों की कितनी सहजता एवं सुगमता से उपलब्धि की थी, यह स्वयं में एक अभूतपूर्व घटना थी, जिसकी अनुभूति उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है :—

"मुझ दीक्षा देकर न्यांगटा अनेक सिद्धान्त वाक्यों का उपदेश करने लगा और मन को सर्वथा निर्विकल्प करके आत्मध्यान में निमग्न होने के लिए कहने लगा, परन्तु मेरी स्थिति तो ऐसी थी कि ध्यान करने के लिए बैठने

५. विवेक चूड़ामणि—पृ० ७१, श्लोक २३९-४२
६. श्री रामकृष्ण लीलामृत—पृ० ४५
७. रामकृष्ण-रोमां रोलां, अनुवादक, धनराज विद्यालंकार पृ० ६९

"यह परमाद्वैत ही एक सत्य पदार्थ है, क्योंकि उस स्वात्मा से अतिरिक्त कोई वस्तु है ही नहीं। इस परमार्थ तत्व का पूर्णबोध हो जाने पर और कुछ भी नहीं रहता। यह सम्पूर्ण विश्व, जो अज्ञान से नाना प्रकार का प्रतीत हो रहा है, समस्त भावनाओं के दोष से रहित अर्थात् निर्विकल्प ब्रह्म ही है।"

ब्रह्म की असीमता एवं सार्वभौमिकता के ही परिणाम-स्वरूप 'नेति नेति' कहकर श्रुतियों ने ब्रह्म का निरूपण किया है। आचार्य शंकर ने ब्रह्म की अलौकिक अनुभूति कर जीवन के अप्रतिम आनन्द-रस का पान किया। ब्रह्म की चिन्मयता, अपरिमित आनन्द लहरी का सुधापान कर ब्रह्माण्ड की उस महान सत्ता का चिन्तन 'विवेक चूड़ामणि' में जगद्गुरु ने इस प्रकारकिया है :—

"इसलिए परब्रह्म सत्, अद्वितीय, विशुद्ध, विज्ञानधन, निर्मल, प्रशान्त, आदि-अन्त रहित, अक्रिय और निरन्तर आनन्दस्वरूप है। वह समस्त मायाकृत भेदों से रहित है, नित्य, सुखस्वरूप, कला रहित और प्रमाणादिका अविषय है तथा वह कोई अरूप, अव्यक्त अनाम और अक्षय ज्योति है जो स्वयं ही प्रकाशित हो रहा है। बुधजन उस परम तत्व को ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इस त्रिपुरी से रहित, अनन्त, निर्विकल्प और अखण्ड-चैतन्य मात्र जानते हैं। वह ब्रह्म त्याग अथवा ग्रहण के अयोग्य, मन वाणी का अविषय, अप्रमेय आदि-अन्त रहित, परिपूर्ण तथा महान तेजोमय है।"[5]

श्री रामकृष्ण ने मधुर भाव की ही साधना अद्वैत-भाव की साधना के पूर्व की थी। श्रीरामकृष्ण ने विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के अनुसार साधना करने पर यह अनुभव किया कि अद्वैत अवस्था ही साधना की चरम परिणति है। अद्वैत भाव में स्थिर होना ही सब प्रकार के साधनभजनादि, का अन्तिम ध्येय है। परमहंस श्री रामकृष्ण कहा करते थे "ईश्वर की चरम परणति में स्वतः वह भाव साधक के जीवन में आकर उपस्थित होता है, समस्त मतों के अनुसार ही उसे अन्तिम बात समझनी चाहिए"[6]

परमहंस श्री रामकृष्ण ने अद्वैत भाव की उपासना पद्धति अपने गुरु श्री तोतापुरी से पायी। सन् १८६५ के अन्त में श्री जगन्नाथ जी की यात्रा करके वापस लौटते हुए परिव्राजक संन्यासी के रूप में स्वामी तोतापुरी दक्षिणेश्वर आये। स्वामी तोतापुरी ने निरन्तर चालीस वर्षों की साधना के बाद सिद्धि प्राप्त की थी। वे जीवनमुक्त थे। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म के सतत् ध्यान से निर्विकल्प समाधि प्राप्त की थी। स्वामी तोतापुरी सदैव ध्यानावस्थित ही रहा करते थे। निराकार ब्रह्म के उस उपासक ने अपने वेदान्त ज्ञान, चिरन्तन ध्यानाभ्यास एवं निर्विकल्प समाधि की आनन्दमयी ज्योत्सना से परमहंस रामकृष्ण को ध्यानाकृष्ट किया। स्वामी ने 'उन्हें अद्वैत वेदान्त के मुख्य सिद्धान्तों, एक अद्वितीय एवं अभिन्न ब्रह्म तथा किस प्रकार अहं के सन्धान में गंभीर में गोता लगाना होगा, जिससे कि ब्रह्म के साथ उसकी एकरूपता की उपलब्धि हो सके और समाधि के द्वारा उसे ब्रह्म में प्रतिष्ठित किया जा सके"[7] आदि की शिक्षा दी। अद्वैत भाव की गुरुदीक्षा लेकर श्री रामकृष्ण ने संन्यास-जीवन में प्रवेश किया। पंचवटी की पुण्य भूमि पर शिखा-सूत्र का यथाविधि होम देकर गुरु-प्रदत्त कौपीन एवं काषाय वस्त्र धारण कर गुरु के निदेशानुसार श्री रामकृष्ण ने निर्विकल्प समाधि में प्रवेश किया। गुरु की यह महत् कृपा थी एवं माँ जगदम्बा की प्रेरणा थी कि श्री रामकृष्ण निराकार ब्रह्म की साधना में एवं निर्विकल्प समाधि में लगातार तीन दिनों तक रहे। परमहंस श्री रामकृष्ण देव ने उन अविस्मृत क्षणों को कितनी सहजता एवं सुगमता से उपलब्धि की थी, यह स्वयं में एक अभूतपूर्व घटना थी, जिसकी अनुभूति उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है :—

"मुझे दीक्षा देकर न्यांगटा अनेक सिद्धान्त वाक्यों का उपदेश करने लगा और मन को सर्वथा निर्विकल्प करके आत्मध्यान में निमग्न होने के लिए कहने लगा, परन्तु मेरी स्थिति तो ऐसी थी कि ध्यान करने के लिए बैठने

५. विवेक चूड़ामणि—पृ० ७९, श्लोक २३९-४२
६. श्री रामकृष्ण लीलामृत—पृ० ४५
७. रामकृष्ण-रोमां रोलां, अनुवादक, धनराज विद्यालंकार पृ० ६९

पर अनेक प्रयत्न करने पर भी मन को पूर्णतः निर्विकल्प करके नाम-रूप की सीमा के परे जाना मुझसे बनता ही नहीं था। अन्य सब विषयों से मन को सहज ही परावृत कर लेता था, परन्तु इस प्रकार निर्विषय होते ही श्री जगदम्बा की चिर-परिचित चिद्घन उज्ज्वल मूर्त्ति आँखों के सामने खड़ी हो जाती थी और नामरूप त्याग का समूल विस्मरण करा देती थी। ध्यान करने बैठता था और मन के निर्विषय होते ही माँ की मूर्त्ति सामने आ जाती थी। तब मैं निर्विकल्प समाधि के विषय में करीब-करीब निराश-सा हो गया और आँखें खोलकर न्यांगटा से कहने लगा, "मन पूर्णतः निर्विकल्प नहीं होता, क्या करूँ ? यह सुनकर न्यांगटा को क्रोध आ गया और जोर से मुझ से बोला, "नहीं होता, इसका क्या मतलब ?" ऐसा कहते हुए इधर-उधर देखने पर उसे एक काँच का टुकड़ा मिल गया और सूई के समान उसके अग्रभाग को वह मेरी भौहों के बीच में जोर से गड़ाकर मुझ से बोला, "इस विन्दु में अपने मन को समेट लो।" तब फिर एकबार मैं दृढ़ निश्चय करके ध्यान करने लगा और पूर्ववत श्री जगदम्बा की मूर्त्ति आँखों के सामने आते ही ज्ञान की खड्ग के रूप में कल्पना कर उसके द्वारा उस मूर्त्ति को मैंने मन ही मन दो टुकड़े कर डाले। तब तो मन में किसी प्रकार का विकल्प शेष नहीं रह गया और मेरा मन तीव्रगति से नाम-रूप राज्य के परे चला गया और मुझे समाधि लग गयी"[8]

परमहंस श्री रामकृष्ण देव ने निर्विकल्प समाधि की वह स्थिति एक ही दिन में प्राप्त कर ली, जिसकी प्राप्ति श्री तोतापुरी ने अपने जीवन के चालीस वर्षों तक कठोर साधना के उपरान्त की थी। श्री तोतापुरी ने श्रीरामकृष्ण के समाधि लाभ की उस स्थिति पर आश्चर्य और आनन्द व्यक्त किया। इस तरह तीन दिन के बदले पूरे ग्यारह मास दक्षिणेश्वर में बिताकर श्री तोतापुरी १८६६ ई० को पश्चिम की ओर चले गये। "तदन्तर श्री रामकृष्ण ने अपने मन में यह निश्चय किया कि अब इसके आगे निर्विकल्प अद्वैत भाव में ही रहना चाहिए। अब मैं, तू, जगत् आदि सर्वकल्पना छोड़कर श्री भगवान् के अद्वय अखण्ड, सच्चिदानन्द स्वरूप में ही एक होकर रहना चाहिए।"[9]

परमहंस रामकृष्ण देव कहते थे कि "अद्वैत का ज्ञान हुए बिना चैतन्य का दर्शन नहीं होता। चैतन्य का दर्शन होने पर तब नित्यानन्द होता है। परमहंस स्थिति में यही नित्यानन्द है। वेदान्तमत में अवतार नहीं है। इस मत में चैतन्यदेव अद्वैत का एक बुलबुला हैं। चैतन्य का दर्शनकैसा ? दियासलाई जलाने से अँधेरे कमरे में जिस प्रकार एकाएक रोशनी हो जाती है।"[10]

अद्वैत की अवस्था में चित्त का अभाव हो जाता है एवं चिन्मय ब्रह्मस्वरुप का दर्शन होता है। आचार्य शंकर ने आत्मचिन्तन की उस अवस्था को ही निर्विकल्प समाधि की संज्ञा दी है। उस स्थिति में मन की सभी वृत्तियाँ शान्त और स्थिर हो जाती हैं। उस अवस्था का वर्णन 'विवेक चूड़ामणि' में इन शब्दों में आचार्य शंकर ने किया है :—

"किमपि सततबोधं केवलानन्दरूपं,
निरुपमतिकेषलं नित्यमुक्तं निरीहम्।
निरवधि गगनाभं निष्कलं निर्विकल्पं,
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ ॥ ४०

प्रकृतिविकृतिशून्यं भावनातीत भावं,
समरसमसमानं मानसम्बन्धदूरम्।
निगमवचनसिद्धं नित्यमस्मत्प्रसिद्धं,
हृदि कलयति विद्वान्ब्रह्मपूर्णं समाधौ ॥ ४१

अजरमरमस्ताभासवस्तुस्वरूपं,
स्तिमितसलिलराशिप्रख्यमाख्याविहीनम्।
शमि गुणविकारं शाश्वतं शान्तमैकं,
हृदि कलयति विद्वान्ब्रह्मपूर्णं समाधौ ॥ ४२

"किसी नित्यबोधस्वरूप, केवल आनन्दरूप, उपमा रहित, कालातीत, नित्यमुक्त निश्चेष्ट, निःसीम आकाश

८. श्रीरामकृष्ण लीलामृत—पं० द्वारकानाथ तिवारी पृ० २२ ९. श्रीरामकृष्ण लीलामृत—खन्ड २ पृ० ३८
१०. श्रीरामकृष्ण वचनामृत—खण्ड १ पृ० ४९१

के समान कला रहित निर्विकल्प पूर्ण ब्रह्म का विद्वान् समाधि अवस्था में अपने अंतःकरण में साक्षात् अनुभव करते हैं। कारण और कार्य से रहित मानवी भावना से अतीत, समस्त उपमा रहित, वेदवाक्यों से सिद्ध नित्य, नैं रूप से स्थित पूर्ण ब्रह्म का विद्वान् समाधि अवस्था में अपने अंतकरण में अनुभव करते हैं। अजर-अमर आभास-शून्य, वस्तुस्वरूप, निश्चल जल राशि के समान, नामरूप से रहित और अद्वितीय पूर्ण ब्रह्म का विद्वान् समाधि अवस्था में हृदय में साक्षात अनुभव करते हैं।"[11]

निर्विकल्प समाधि की अवस्था से लौटने के बाद परमहंस श्रीरामकृष्ण देव उस प्रकार की अनिर्वचनीय अवस्था में सदैव रहने लगे। अब उस अवस्था में उनके आध्यात्मिक मार्ग में कभी भी सांसारिक वस्तु, व्यक्ति आशा, इच्छा आदि की बाधा उपस्थित नहीं हुई। वे अखण्ड सच्चिदानन्द अवस्था को प्राप्त कर स्वयं सच्चिदानन्द हो गये थे।

११. विवेक चूड़ामणि : शंकराचार्य : गीता प्रेस : पृ० १३३-३४

—०—

२ अक्टूबर को जन्म तिथि पर

स्वामी अभेदानन्द

—देव आनन्द मधुकर

शशि निकेतन, पुरी १५ अगस्त, १९१५

प्रिय काली,

हमलोग तुम्हें भूले नहीं हैं, बस थोड़ा भावुक हो गये थे। मैं अधिक समय तक ऐसे नहीं रह सकता और देखो एक बार फिर तुम्हारे पास उपस्थित हूँ। चलो बाहें फैलाओ मेरी ओर। आश्चर्य है, श्री ठाकुर के सबसे प्रिय और तेज शिष्य होकर तुम हम सबको भूलकर कैसे रह सकते हो।

भैया, मैं तुम्हें अपना सगा मानकर ही ऐसा लिखता हूँ। चाहे तुम कितने भी महान सन्त हो जाओ हम सबको छोड़ कर नहीं रह सकते। हमारे लिए तुम वही कालू वीर, काली तपस्वी, हमारे सर्वप्रिय सगे हो। तुम्हें याद है, काशीपुर उद्यान में श्री ठाकुर ने हम दोनों से कहा था "तुम दो बन्दर हो और मैं मदारी। तुम्हारे गले में रस्सी डालकर अपने हाथ रखता हूँ। बन्दर जब अधिक शरारत करते हैं तो मदारी हाथ की रस्सी कस कर उन्हें ठीक करता है।" भाई, हमलोग उनके हाथ बन्दर ही हैं। भगवान के राम अवतार के समय हमारी पूँछ भी थी, इसबार पूँछ गिर गयी है। बस इतना ही अन्तर है। यह न समझना कि इसबार हम पिछले जन्म से कुछ अधिक होशियार हो गये हैं। ये श्री ठाकुर के ही शब्द हैं!

हम सब की इच्छा है कि तुम अब स्वदेश आकर कुछ दिन रहो।...तुम्हें याद है बरानगर मठ में हम कैसी इन्द्रियातीत उत्तेजना में दिगम्बर हो "हर-हर बम-बम" बोलते हुए नाचने लगते थे? कितना संगीत और दार्शनिक विषयों पर कितनी बहसें हुआ करती थीं। भैया, तुम उस देश में बहुत दिन रह चुके। अब और क्यों रहते हो?.....मेरा हार्दिक प्रेम और आदर लेना।

श्री ठाकुर की सेवा में तुम्हारा बाबूराम

यह पत्र है स्वामी प्रेमानन्द का, गुरु भाई स्वामी अभेदानन्द को जो १७-१८ वर्ष से अमरीका में स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रारम्भ किये गये वेदान्त प्रचार कार्य में लगे रहे थे। इससे एकसाथ भाइयों में प्रेम और चिर प्रवासी स्वामी अभेदानन्द के लिए विशेष भावुकता का पता चलता है।

स्वामी अभेदानन्द का पूर्वाश्रम का नाम काली प्रसाद चन्द्र था। २ अक्टूबर, १८६३ को आपका जन्म कलकत्ते के अहीर टोले में एक सम्भ्रान्त एवं सुशिक्षित परिवार में हुआ था। वैष्णव परिवार में रहकर भी आपकी माता श्रीमती नयनतारा देवी माँ काली की उपासिका थी। उन्होंने माँ के पास साधु प्रकृति के एक योगशील पुत्र की मन्नत रखी थी, इसीलिए पुत्र का नाम आपने काली प्रसाद रखा। जन्म के समय आँखें बन्द कर शिशु काली चुप मानो ध्यानास्थप ड़ा रहा था। यहाँ तक कि सामान्य नवजात अवस्था में लाने के लिए उसकी आँखों पर मिर्च की चुरन लगानी पड़ी तब जाकर उसकी पलकें खुलीं और उसका रोना सुनने को मिला। श्रीमती नयनतारा देवी को तत्क्षण अभास हो गया कि विश्वमाता ने योगी पुत्र पाने की उनकी मन्नत रख ली है। शिशु के छः मास पूरे होने पर पूर्व संकल्प के अनुसार आपने काली घाट में माँ के चरणों में उसे अपने स्तन के रक्त के साथ समर्पित किया।

काली प्रसाद के पिता रसिकलाल चन्द्र कलकत्ते में ओरिएन्टल सेमिनरी में अंग्रेजी के शिक्षक थे और श्री गिरीश चन्द्र घोष तथा स्वामी विवेकानन्द के पिता श्री

विश्वनाथ दत्त आपके प्रिय शिष्यों में रह चुके थे । पत्नी की तरह ही रसिकलाल भी उच्च आध्यात्मिक विचारों वाले और गरिमापूर्ण चरित्र के थे। कोई आश्चर्य नहीं कि इस अनूठे दम्पत्ति का पुत्र श्री रामकृष्ण देव के प्रिय शिष्यों में हुआ। काली प्रसाद बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि का था और पढ़ाई-लिखाई, खेल-कूद, चित्रकला आदि में कक्षा में सबसे आगे रहा। घर पर माता-पिता से पुराणों की प्रेरक कहानियाँ सुन-सुन कर बालक काली भी धीरे-धीरे अपना आध्यात्मिक लक्ष्य निर्धारित करने लगा।

किशोरावस्था से ही काली की संस्कृत की ओर विशेष रुझान थी। अठारह वर्ष की आयु में उसने पिता की ओरिएन्टल सेमिनरी से एन्ट्रेन्स की परीक्षा अच्छे अंकों से पास की। स्कूल के प्रारम्भिक दिनों में ही काली ने निर्णय ले लिया था कि उसे दार्शनिक बनना है और चित्रकला के शिक्षक को उसने इसका कारण भी बताया था "चित्रकार केनवास की सतह पर ही चित्र खींचता है जबकि दार्शनिक उसकी तह तक जाने की चेष्टा करता है।" एन्ट्रेन्स परीक्षा पास करते-न-करते काली जीवन-दर्शन की गुत्थियाँ सुलझाने में लग गया। गीता पढ़कर प्राचीन आचार्यों के पदचिह्नों पर चलने की उसकी लगन और भी तीव्र हो गई। पर आध्यात्मिक पिपासा के साथ ही ऐहिक ज्ञान के प्रति भी काली की उतनी ही रुझान थी और छोटी उम्र में ही उसने न केवल जॉन स्टुआर्ट मिल का "तर्कशास्त्र" तथा "धर्म पर तीन निबन्ध" हर्शेल का "खगोलशास्त्र" गैनोट का "भौतिकशास्त्र" लिडइस का "दर्शन का इतिहास" तथा हैमिलटन का 'दर्शनशास्त्र" वरन् कालिदास, भवभूति, वाणभट्ट तथा ऐसे अन्य पुरातन कवियों के सभी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी पढ़ डाले।

युवक कालीप्रसाद का मानसिक लगाव किसी विशेष वैचारिक प्रणाली या आस्था से न था। वह इसाई, ब्रह्मसमाजी और सनातन हिन्दू धर्म प्रचारकों के प्रवचन उतनी ही तन्मयता और रुचि से सुना करता। १७ वर्ष की अवस्था में विख्यात हिन्दू दार्शनिक शशधर तर्क चूड़ामणि के हिन्दू धर्म दर्शन के छः सिद्धान्तों पर दिये गये व्याख्यान काली प्रसाद ने सुने और पतंजलि के योग सिद्धान्तों तथा मानव आत्मा की असीमित सम्भावनाओं से अत्यन्त प्रभावित हुए बिना वह न रह सका। शीघ्र ही इस विषय पर कई आधिकारिक मौलिक ग्रन्थ भी युवक काली प्रसाद ने पढ़े और अब वह योगाभ्यास की ओर उन्मुख हुआ। पर मित्रों ने उसे योग्य गुरु के निर्देश के बिना योगसूत्र के अभ्यासों को न करने की सलाह दी। परिणामतः काली प्रसाद अब दिन रात योग्य गुरु की खोज में रहने लगा, जिनसे मनुष्य के आध्यात्मिक अनुभवों का चरमोत्कर्ष, निर्विकल्प समाधि तक पहुँचने का मार्ग-दर्शन उसे मिल सके। इसी प्रसंग में किसी सहपाठी से काली प्रसाद को दक्षिणेश्वर के श्री रामकृष्ण देव की जानकारी मिली।

काली प्रसाद श्री ठाकुर के दर्शन को बेचैन हो गया और अन्ततः सन् १८८४ के मध्य तक एक दिन अपराह्न की कड़कती धूप में वह अकेला ही दक्षिणेश्वर को निकल पड़ा। तब श्री रामकृष्ण कलकत्ते में किसी भक्त के यहाँ गये थे। निराश काली प्रसाद मन्दिर के प्रांगण में ही एक वृक्ष के नीचे उनके लौटने की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ समय बाद एक समवयस्क युवक शशि (बाद में स्वामी रामकृष्णानन्द) काली प्रसाद से वृक्ष के नीचे ही मिला। काली के दक्षिणेश्वर आने का उद्देश्य ज्ञात होने पर शशि ने उसके भोजन और विश्राम की व्यवस्था कर दी और युवक काली उत्सुकता से श्री रामकृष्ण की वापसी का इन्तजार करने लगा। रात के नौ बजे श्री रामकृष्ण देव के लौटते ही काली ने चुपचाप उन्हें प्रणाम किया और उनसे योगाभ्यास सीखने की अपनी इच्छा व्यक्त की। पहली ही दृष्टि में श्री रामकृष्ण देव ने युवक की आध्यात्मिक सम्भावनाएँ परख लीं और प्रसन्नचित्त बोले "तुम पूर्व जन्म में एक महान् योगी थे। यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है। मैं तुम्हें योगाभ्यास सिखलाऊँगा।" ऐसा कहकर श्री रामकृष्ण ने कालीप्रसाद को एक ओर ले जाकर उसकी जिह्वा पर एक मंत्र लिख दिया और उसके सीने पर अपना दाहिना हाथ रखा। श्री रामकृष्ण

का ऐसा करना था कि काली प्रसाद तत्क्षण गहरे ध्यान में डूब गया।

श्री रामकृष्ण के दर्शन के बाद काली प्रसाद तन-मन से कठिन योगाभ्यास में लग गया और प्रायः अवसर पाते ही दक्षिणेश्वर आने लगा। इन्हीं दिनों काली का परिचय नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) से हुआ और शीघ्र ही दोनों अत्यन्त घनिष्ठ मित्र हो गये। बाबूराम (स्वामी प्रेमानन्द) काली प्रसाद के सहपाठी ही थे। काशीपुर उद्यानगृह में श्रीठाकुर की इहलीला के अन्तिम दिनों में काली प्रसाद ने अन्य गुरुभाइयों के साथ अत्यन्त लगन के साथ उनकी सुश्रूषा की और उनके महाप्रयाण के बाद अन्य पार्षदों के साथ ही संन्यास ग्रहण किया और स्वामी अभेदानन्द नाम लिया।

श्री 'म' रचित श्रीरामकृष्ण वचनामृत में, तीसरे खण्ड के अन्त के दो-चार पृष्ठों में, बरानगर मठ के दिनों का अत्यन्त जीवन्त चित्रण है, जब युवा संन्यासी श्री ठाकुर की स्मृति का पाथेय लेकर कठिन आध्यात्मिक साधना में लगे थे। तब काली प्रसाद दिन-रात एक कमरे में अकेले कठोर साधना में लगे रहते। सभी गुरुभाइयों ने उन्हें काली तपस्वी, कालू वीर या काली वेदान्ती कहना शुरू कर दिया था। यहाँ तक कि काली प्रसाद की योगसाधना की कोठरी भी काली तपस्वी का कमरा कही जाने लगी। वचनामृत के बहुलांश में काली की कही चर्चा नहीं, यद्यपि प्रायः अधिकांश अवसरों पर वह श्रीरामकृष्ण के निकट उपस्थित थे। बाद के दिनों में इसके लिए काली प्रसाद प्रायः श्री 'म' पर प्रेमकोप कर चुहल से कहते कि अधिकांश मौकों पर आपने मुझे "इत्यादि भक्त" में ही सम्मिलित कर लिया। अस्तु

बरानगर मठ में ही स्वामी अभेदानन्द ने श्री रामकृष्ण और श्रीश्रीमाँ पर कई मनोभावन स्तोत्र रचे। श्रीमाँ ने इन स्तोत्रों को सुनकर उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा था, "तुम्हारे कण्ठ में सदा विद्या की देवी का निवास हो।" सचमुच श्रीमाँ का यह आशीर्वाद अक्षरशः स्वामी अभेदानन्द के जीवन में चरितार्थ हुआ।

पर काली महाराज अधिक दिनों तक बरानगर मठ में नहीं रह सके। शीघ्र ही अन्य गुरुभाइयों की तरह आप भी परिव्राजक वृत्ति के आकर्षण का संवरण न कर सके और वर्षों तक केदारनाथ, बद्रीनारायण, हरद्वार, पुरी द्वारका, रामेश्वरम् में मधुकरी वृत्ति कर साधना करते रहे। आपने ऋषिकेश में विख्यात स्वामी घनराज गिरि के सम्पर्क में वेदान्त दर्शन का विस्तृत अध्ययन किया। निश्चय ही इस विस्तृत और सम्यक् अध्ययन का ही परिणाम था कि बाद के दिनों में स्वामी अभेदानन्द ने विश्व के समक्ष इतनी विद्वत्तापूर्ण और इतने ओजस्वी भाषण और ग्रन्थ दिये। इस प्रसंग में वर्षों पूर्व के श्रीठाकुर के वचन भविष्यवाणी सदृश ही जान पड़ते हैं। दक्षिणेश्वर में प्रायः श्री रामकृष्ण देव की सेवा करते हुए काली पाश्चात्य एवं प्राच्य दर्शन की पुस्तकें पढ़ा करते। एक बार उन्होंने काली को ऐसे ही मिल का तर्कशास्त्र तन्मय हो पढ़ते देख कहा था, मैं देख रहा हूँ "तुम लड़कों में किताबें पढ़ने का अभ्यास ला रहे हो। पर जान रखना किताबी ज्ञान किसी काम का नहीं। स्वयं को मारने के लिए नख काटने की एक नहरनी पर्याप्त है पर दूसरों को मारने के लिए ढाल, तलवार इत्यादि अस्त्र-शस्त्रों की आवश्यकता होती है। उसके लिए पुस्तकें पढ़नी होती हैं। जिन्हें शिक्षा देनी है, वे पुस्तकें पढ़ेंगे। "श्री ठाकुर ने काली को पुस्तकें पढ़ने से मना नहीं किया। कदाचित नरेन्द्र के साथ काली के विषय में भी उन्होंने जान रखा था कि उन्हें वर्षों तक विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ और उपदेश कार्य करना पड़ेगा।

दक्षिणेश्वर के दिनों से ही काली नरेन्द्र के अनुगत हो गये थे। पर दोनों में दार्शनिक मसलों पर कई बहसें हुआ करतीं। इनकी चर्चा सुनकर श्री ठाकुर ने एकबार काली को बुलाकर प्रसन्नता पूर्वक कहा था, "लड़कों में तुम्हारी विलक्षणता नरेन्द्र के बाद ही है। जैसे नरेन्द्र बहस में अपनी बात साफ-साफ साबित कर सकता है वैसे ही तुम भी कर सकोगे।" स्वामी अभेदानन्द ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि श्री ठाकुर, प्रारम्भ से ही उन्हें

बाद के उनके उपदेश कार्य के लिए परोक्ष रूप से तैयार कर रहे थे। उन दिनों काली नरेन्द्र की तरह ही श्रीरामकृष्ण देव से भी कभी-कभी बहस करने में झिझकते नहीं थे। काशीपुर उद्यान में श्रीठाकुर की इहलीला के अवसान काल में एक दिन नरेन्द्र, निरञ्जन और काली उद्यान के तालाब में मछली पकड़ने बैठे। नरेन्द्र और निरञ्जन के हाथ तो एक-दो मछलियाँ आयीं पर काली अन्य कार्यों की तरह ही इस संधान में भी दक्ष निकले। समयान्तर में इसकी खबर श्रीठाकुर तक भी पहुँची तो आपने काली से पूछा "क्या तुम सच ही बंशी डालकर मछलियाँ पकड़ते रहे हो?" काली के हाँ करने पर श्रीठाकुर ने कहा बंशी डालकर मछलियाँ पकड़ना पाप है, क्योंकि इससे जीवहत्या होती है। काली ने चट कहा, "पर गीता में कहा गया है कि आत्मा की न हत्या होती है न आत्मा किसी की हत्या करती है। फिर मछली पकड़ने में क्या पाप हो सकता है?"

श्रीठाकुर ने स्मित हास्य के साथ कई तरह से काली को समझाने की चेष्टा की और यह भी कहा— "जब सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब कदम बेताल नहीं पड़ते।" ऐसा कहते हुए उन्हें जोरों की खाँसी आ गयी और मुँह से रक्त के किञ्चित छींटे भी आ गये। काली ने घबड़ाकर उन्हें और बोलने से मना किया पर कृपासिन्धु श्रीठाकुर ने कहा तुम मेरे सबसे होशियार लड़कों में से हो। मैंने जो कहा है उस पर विचार करो तो मेरी बात समझ सकोगे। इसके बाद तीन दिन लगातार काली ध्यान करते रहे और अन्ततः श्रीठाकुर की बातों का रहस्य समझ सके। फिर उन्होंने श्रीठाकुर से जाकर बताया और भूल के लिए क्षमा माँगी।

स्वामी अभेदानन्द ने अपनी आत्मकथा में एक अत्यन्त मार्मिक प्रसंग की चर्चा करते हुए लिखा है, "अपनी महासमाधि की एक रात पहले श्रीठाकुर ने नरेन्द्रनाथ को बुलाकर कहा था कि तुम लड़कों को एक साथ रखना और उनकी देखभाल करना। हमलोगों ने नरेन्द्रनाथ को भी श्रीठाकुर के इस आदेश की याद दिलायी और उन्हें अपना अगुआ बनाया। नरेन्द्रनाथ हम सब की एक मात्र आशा, आस्था और सान्त्वना स्वरूप थे। उनके नेतृत्व में हम अध्ययन, साधना-पूजा, संगीत इत्यादि में समय बिताते। उन दिनों की आर्थिक कठिनाई का वर्णन नहीं किया जा सकता, पर आज भी उस समय की याद कर मन हर्षोत्फुल्ल हो उठता है।

श्रीठाकुर के महाप्रयाण के बाद अपनी-अपनी तरह से प्रत्येक युवा संन्यासी आत्मा से साक्षात्कार और मुक्ति या निर्विकल्प समाधि के ध्येय से साधना कर रहा था और तत्कालीन प्रचलित सनातन हिन्दू विचारधारा के अनुरूप ही सांसारिक कार्यों से यथासम्भव अलग-अलग रहकर संन्यास धर्म में जी-जान से लगा था। पर अमेरिका से कई विचारोत्तेजक प्रेरक पत्रों में स्वामी विवेकानन्द ने गुरुभाइयों को सर्वसाधारण की सेवा का व्रत लेकर संन्यासियों के एक नये समुदाय का गठन करने के लिए कहा जो श्री श्रीठाकुर के जीवनदायी उपदेशों को व्यवहार में लाकर देश के समक्ष एक आदर्श उपस्थित कर सके। श्रीठाकुर के पार्षदों के लिए मात्र अपनी मुक्ति की कामना रखना शोभा नहीं देता। नरेन्द्रनाथ के नेतृत्व में अडिग विश्वास के कारण स्वामी अभेदानन्द सहित सभी गुरुभाइयों को यह नया लक्ष्य और नयी साधना अपनाने में कठिनाई नहीं हुई।

स्वामी जी के आदेश पर काली महाराज सन् १८९६ के उत्तरार्ध में लन्दन गये जहाँ स्वामी विवेकानन्द वेदान्त प्रचार में लगे थे। काली महाराज के, जो तब मात्र ३३ वर्ष के थे, लन्दन पहुँचते ही बिना पूर्व सूचना के स्वामीजी ने क्रिस्टो-थियोसॉफिकल सोसायटी में अद्वैत वेदान्त पर उनका एक व्याख्यान रख दिया। अभेदानन्द स्वामी ने जब पोस्टरों, पर्चों और अखबारों में अपने आगामी भाषण की सूचना देखी तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यहाँ तक कि अंग्रेजी तो क्या किसी भारतीय भाषा में भी कोई व्याख्यान देने की स्थिति में उस समय अपने तईं वे नहीं थे। उन्हें इस संकट में बरबस डालने के लिए आपने स्वामीजी को उलाहना भी दिया। पर काली महाराज की योग्यता से परिचित स्वामी जी टस से मस न हुए और बोले उन्हीं श्रीठाकुर पर आश्रित रहो जिन्होंने

मेरे जीवन की सारी परीक्षाओं में मुझे बल दिया है। अन्ततः स्वामी अभेदानन्द नियत दिन को श्री श्रीठाकुर की अनुपम दया का सम्बल लेकर भाषण देने को उपस्थित हुए। कहना न होगा कि खचाखच भरा हुआ हॉल अभेदानन्द स्वामी के भाषण के बाद तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा और गुरुभाई की सफलता पर स्वामी जी की प्रसन्नता की तो कोई सीमा ही नहीं रही। इसके बाद स्वामी जी निश्चिन्त हो गये कि उनकी अनुपस्थिति में काली महाराज लन्दन में उनका लन्दन का कार्यभार बखूबी सँभाल लेंगे। उसी वर्ष दिसम्बर में स्वामी जी काली महाराज के हाथ लन्दन का काम सौंप कर स्वदेश रवाना हो गये। एक वर्ष तक लन्दन में प्रचार कार्य के उपरान्त स्वामी अभदानन्द स्वामी जी की अनुमति से न्यूयार्क चले आये। स्वामी जी की तरह ही काली महाराज को अमेरिका में प्रारम्भ में धर्मान्ध इसाई पादरियों से लोहा लेना पड़ा। पर श्रीठाकुर की कृपा से स्वामी विवेकानन्द की नाईं ही आप भी सदा सफल रहे और फिर तो लगभग बीस वर्षों तक अमेरीका के आध्यात्मिक आकाश में सूर्य की तरह चमकते रहे। प्रवास काल में मैक्समूलर, पॉल दसेन, विलियम जेम्स जैसे प्रख्यात दार्शनिकों के साथ ही तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति भी आप की विद्वत्ता और वक्तृता से प्रभावित हुए बिना न रह सके।

अपने अधिकांश भाषणों में अभेदानन्द स्वामी वैचारिक पवित्रता और प्रेम-भावना पर जोर देकर कहते, "चाहे हम भगवान पर विश्वास रखें न रखें, चाहे मसीहा पर हमारी आस्था हो न हो, यदि हममें आत्म नियंत्रण, एकाग्रता, सत्यप्रियता और सबके लिए निःस्वार्थ प्रेम है तो निश्चय ही हम आध्यात्मिक पूर्णता के मार्ग पर हैं। पर यदि ईश्वर में विश्वास रखकर भी ये चार गुण न रहें तो मनुष्य आध्यात्मिकता से कोसों दूर है। सच तो यह है कि ऐसे व्यक्ति का विश्वास मात्र शाब्दिक और बेकार है।" उन्होंने बारम्बार पाश्चात्य जिज्ञासुओं को बताया 'वेदान्त धर्म और दर्शन केवल एक बौद्धिक मान्यता भर न होकर सृष्टि के आधारभूत सिद्धान्तों का एक दीर्घ एवं कठिन संधान है। इसी परम सिद्धान्त, सत्य या सत्ता को मानव मस्तिष्क ने ईश्वर, स्रष्टा, रचयिता, प्रथम कारण, परमपिता, जगन्माता, जहोवा, अल्लाह या ब्रह्म की संज्ञा अपनी-अपनी सांस्कृतिक रुझान के आधार पर दी है।" अभेदानन्द स्वामी ने अपने व्याख्यानों में यह बताया कि सत्य की खोज में हमें प्राकृतिक के परे परम के क्षेत्र में जाना होगा। प्रकृति अपनी विभिन्नताओं से हमें सर्वदा विभ्रान्त कर देती है। इतनी सदियों की तलाश के बाद भी वैज्ञानिकों ने प्राकृतिक घटनाओं से ऐसे निष्कर्ष निकाले हैं जो बिल्कुल बेमानी हैं। विज्ञान की नवीनतम मान्यता वही है जो वेदान्त का प्रारम्भ है। परम सत्ता अज्ञात और अज्ञेय है ऐसा समझकर विज्ञान अपनी हार स्वीकार कर लेता है तब वेदान्त मनुष्य को आत्मा में नाम-रूप की विभिन्नताओं से हटकर परम सत्य की खोज को कहता है। काली महाराज के विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यानों ने पाश्चात्य बुद्धि जीवियों का दिल जीत लिया। आज यूरोप और अमेरिका में वेदान्त में सर्वसाधारण की रुचि का श्रेय बहुत हद तक काली महाराज के बीस वर्षों के अथक परिश्रम को है।

स्वामी अभेदानन्द न केवल एक प्रभावशाली वक्ता वरन् एक असाधारण लेखक भी थे। दस से अधिक खण्डों में प्रकाशित इनके ग्रन्थ अब भी सम्पूर्ण विश्व में जिज्ञासु पाठकों द्वारा उत्सुकता से पढ़े जाते हैं। श्रीरामकृष्ण देव के शिष्यों में केवल आप अपनी आत्मकथा लिख सके जिसमें आपकी आध्यात्मिक यात्रा की सजीव झाँकी मिलती है। गम्भीर विचारक होने के साथ ही आप कठिन परिश्रम बिना क्लान्ति के कर सकते थे। स्वामी विवेकानन्द के कार्यों को आपने अमेरिका में और अधिक संगठित कर बहुत आगे बढ़ाया। इतने व्यस्त जीवन में भी आप का प्रशान्त सौम्य व्यक्तित्व आपके पाश्चात्य शिष्यों को अत्यन्त प्रभावित करता था।

एक दीर्घ प्रवास के बाद सन् १९२१ में काली महाराज जापान, चीन, फिलीपीन, सिंगापुर, कुआलालमपुर, रंगून होते हुए भारत आये। ५७ वर्ष की आयु में भी आपका उत्साह अदम्य था और स्वदेश आकर दो वर्षों

तक आप तिब्बत, काबुल, पेशावर, पंजाब आदि उत्तरी प्रदेशों की यात्रा करते रहे।

सन् १९२३ में बेलूर मठ लौटने के उपरान्त अपनी योजना के अनुसार वेदान्त कार्य चलाने के लिए कलकत्ते में आपने श्रीरामकृष्ण वेदान्त सोसायटी की स्थापना की। प्रभावशाली व्यक्तित्व और श्रीठाकुर की अनुप्रेरक शक्ति के आकर्षण से अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों का सहयोग सोसायटी को अनायास ही प्राप्त हुआ। विश्ववाणी नामक एक बँगला पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया गया। शीघ्र ही भारत भर में तथा विश्व के कई अन्य देशों में सोसायटी की शाखाएँ स्थापित की गयीं जो आज भी सेवा कार्य और वेदान्त प्रचार में उल्लेखनीय योगदान दे रही हैं। बिहार में बेला (मुजफ्फरपुर) में सोसायटी का एक मठ, श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम नाम से स्थापित है, जहाँ एक प्रसिद्ध चिकित्सालय तथा एक विद्यालय कई वर्षों से चलाये जा रहे हैं।

कई वर्षों के अथक परिश्रम के कारण काली महाराज का स्वास्थ्य जीवन के शेष दिनों में उतना संतोषप्रद नहीं रहा करता था। पर अस्वस्थता के बावजूद सन् १९३७ में कलकता टाउन हॉल में श्रीरामकृष्ण की शतवार्षिकी पर आयोजित धर्म संसद की अध्यक्षता करते हुए काली महाराज का युवा दुर्लभ अदम्य उत्साह और उनकी असाधारण शक्ति का परिचय एक बार फिर शिष्यों को मिला। स्वामी विवेकानन्द ने १८९३ में विश्व धर्म संसद में जब अविस्मरणीय भाषण कर अमरीकी जनमानस पर अपनी आध्यात्मिक सत्ता जमा ली थी तब भी युवक स्वामी अभेदानन्द ने इसी तरह दिन-रात एककर बरानगर मठ के अपने गुरुभाइयों के साथ मिलकर स्वामी जी के कार्यों के स्वागत में कलकते में एक विशाल जन सभा का आयोजन किया था। तब स्वामी विवेकानन्द बंगाल में उतने प्रसिद्ध नहीं थे।

कलकत्ते की धर्मसंसद में अपने अध्यक्षीय भाषण में आपने कहा, भगवान श्रीरामकृष्ण ने अपने जीवन काल में दिखाया कि ऐन्द्रिक संवेदनाओं से उदासीन रहकर एक सच्चा आध्यात्मिक मनुष्य कैसे लगातार ईश्वरी चेतना के तल पर रह सकता है। विश्व में पहली बार श्रीठाकुर ने अपनी आस्था और जीवन-प्रणाली से यह दिखलाया कि एक ही परम सत्ता ईसाई, इस्लाम पारसी या हिन्दू धर्म का आदर्श है। अपने जीवन में श्रीरामकृष्ण देव ने "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" का वेदान्त वाक्य अक्षरशः चरितार्थ कर दिखाया। उन्होंने अपनी जीवन्त धारणा से यह भी बताया कि परममत्ता साकार, निराकार और साथ ही दोनों से परे भी है। अन्त में स्वामी अभेदानन्द ने तत्कालीन साम्प्रदायिक वैमनस्य के सन्दर्भ में कहा, मुझे आशा है कि यह धर्म संसद साम्प्रदायिक भेद-भाव दूरकर विभिन्न मतावलम्बियों में सौहार्द्र के बीज बो सकेगा।

कलकत्ते की धर्म-संसद में व्यक्त उपर्युक्त उद्गार काली महाराज के अन्तिम सार्वजनिक वचन साबित हुए। सन् १९३९ में आपने जब महासमाधि ली तो आप पार्थिव शरीर में श्रीरामकृष्ण देव के अकेले पार्षद थे। आपके महाप्रयाण से विश्व भर में आध्यात्मिक मुमुक्षु जिज्ञासुओं में शोक छा गया। आपका जीवन सच्ची आध्यात्मिकता, सेवाभाव और उच्च स्तर की बौद्धिकता का विलक्षण सम्मिश्रण था। आप दैवी सत्ता के आदेश से श्रीठाकुर का काम करने को ही उनके पार्षद के रूप में भारतभूमि में अवतरित हुए थे और अपनी भूमिका पूरी होते ही प्रकाश और जीवन के चिरन्तन स्रोत में विलीन हो गये जहाँ से आपका आगमन हुआ था। स्वामी अभेदानन्द की इह-लीला की समाप्ति के साथ ही विश्व के आध्यात्मिक रंगमच पर सदियों बाद फिर से खेले गये एक दैवी नाटक का पटाक्षेप हो गया। "गवैयों और बजनियों का एक दल" विख्यात दार्शनिक क्रिस्टाफर ईशरवुड के शब्दों में "अचानक आकर गाने-बजाने लगा था और वैसे ही अचानक वह दल विदा हो गया।"

पर नाटक के कलाकारों के नैपथ्य में लौट जाने से कहानी शेष नहीं हो जाती। एक अन्य कहानी जो आरम्भ होती है वह है श्रीरामकृष्ण से अनुप्रेरित और उनकी परम्परा से अनुप्राणित कई आध्यात्मिक संगठनों की कहानी जो आनेवाली कितनी सदियों तक मानव मात्र को आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर करती रही।

श्रीसारदा देवी

श्रीमत स्वामी वेदान्तानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

नवम् अध्याय
दक्षिणेश्वर में स्वामी-सेवा

दक्षिणेश्वर में सारदा देवी का अधिकांश समय पतिदेव की सेवा में कट जाता था। पतिदेव को सदैव वे अपना ईष्टदेवता मानती थीं, इसलिए पति की सेवा उनके लिए साधन-भजन के समान ही थी। उनके साधन-भजन की कुछ बातें पहले कही गयी हैं, अभी दक्षिणेश्वर में उनके दिन किस प्रकार कटते थे वे बातें कुछ और सुनी जायँ। कहानी आरम्भ करता हूँ श्री रामकृष्ण की प्रिय शिष्या योगेन्द्रमोहिनी देवी (जो 'योगेन-माँ' के नाम से परिचित थीं) के मुँह से कही गयी भाषा में। श्रीरामकृष्ण के शिष्य और भक्तगण उन्हें 'ठाकुर' एवं सारदादेवी को 'माँ' कहते थे और कहते हैं। योगेन माँ ने कहा है—"वे (माँ) दक्षिणेश्वर में प्रातः चार बजे के पहले शौचादि कर्म से निवृत होकर ध्यान करने बैठती थीं। ठाकुर प्रातः और संध्या को ध्यान करने कहते थे न! इसके बाद बाकी कार्य-कर्मों को निपटाकर पूजा करने बैठती थीं। पूजा, जप, ध्यान—इनमें प्रायः डेढ़ घंटे बीत जाते थे। इसके उपरान्त भोजन बनाने बैठतीं। रसोई बन जाने पर जिस दिन सुयोग होता, उस दिन अपने हाथों से ठाकुर को स्नान के लिए तेल-मालिश कर देतीं। साढ़े दस-ग्यारह के बीच ठाकुर भोजन करते। ठाकुर स्नान करने जाते। माँ आकर जल्दी-जल्दी उनके लिए पान लगाकर रखतीं और ध्यान रखतीं कि ठाकुर स्नान कर लौटे कि नहीं! ठाकुर के अपने घर आते ही माँ आकर जल और आसन देकर फिर भोजन की थाली लाकर ठाकुर को भोजन के लिए बैठातीं। उस समय अनेक प्रकार की बातें करते रहने की माँ चेष्टा करतीं ताकि भोजन के समय (ठाकुर को) भावसमाधि उपस्थित हो जाने से भोजन में कोई विघ्न-बाधा न उत्पन्न हो जाय। ठाकुर के भोजन कर लेने पर माँ अपने मुँह में थोड़ा कुछ डालकर पानी पी लेतीं। फिर पान लगाने बैठतीं। पान लगाना हो जाने पर गुनगुना कर गीत गातीं। वह भी खूब सावधानी से, जिससे कोई सुनने न पाये। इसके बाद जब मिल में एक बजे का भोंपू बज उठता, उसे सुनकर वे खाने बैठतीं। सुतरां, डेढ़-दो बजे के पहले किसी दिन माँ भोजन नहीं कर पातीं। भोजन के उपरान्त नाममात्र के लिए थोड़ा विश्राम कर बाल सुखाने बैठतीं—तीन बजे के लगभग—सीढ़ी के ऊपर। फिर दीया-बाती ठीक-ठाक कर, लाये हुए जल से 'नमो-नमो' कर मुँह-हाथ धो, कपड़े फींच कर संध्या के लिए प्रस्तुत होतीं। संध्या होने पर दीप जलाकर ठाकुर देवता के सामने धूप दिखा माँ ध्यान पर बैठतीं। इसके बाद रात की रसोई बनाने, ठाकुर को भोजन कराने और सास को खिलाने के पश्चात् माँ भोजन करतीं। तदुपरान्त थोड़ा विश्राम करने के लिए सो जातीं। इन सारे कार्यों के बीच जब भी ठाकुर की माँ 'बहू' कहकर पुकारतीं, उसी क्षण माँ चंचल होकर दौड़ पड़तीं। एक दिन मैंने कहा था, "माँ, "बहू" सुनते ही जो हकबकायी हुई लपटकर, तेजी से जाती हो—सो किसी दिन नीचे दरबाजे से माथा ठेक जाने पर अपने को लहूलुहान कर लोगी।' माँ ने हँसकर कहा,—'होगा तो होगा। वे जो परम गुरु हैं! उनकी माँ—मेरी भी माँ। आह, बूढ़ी हो गयी हैं, समय पर नहीं जा पाने से उनको (सास को) कितनी असुविधा होगी! इसी से तो माँ, झटक कर जाती हूँ!"

पहले पहल दक्षिणेश्वर में उन्हें विशेष अधिक कार्य नहीं थे। तीन-चार व्यक्तियों की रसोई और अन्यान्य सांसरिक कार्य! किन्तु, दिन-दिन श्रीरामकृष्ण का नाम

चारों दिशाओं में फैलने लगा तथा झुण्ड के झुण्ड भक्तों ने उनके समीप आना-जाना आरम्भ किया। कई-कई भक्त रात को दक्षिणेश्वर में बीच-बीच में रहने लगे—साधन-भजन के लिए। इसके साथ ही सारदा देवी के काम-काज भी बढ़ चले। किसी-किसी दिन तीन-चार सेर आँटा की रोटी पकानी पड़ती। उसके ऊपर से किसी को खिचड़ी की आवश्यकता होती और किसी को चने की दाल पसन्द पड़ती। उनके कामों का बोझ देखकर श्री रामकृष्ण ने दो-एक भक्तजनों को उनकी सहायता करने के लिए लगा दिया था।

लाटू नामक एक बिहारी लड़के ने कुछ दिनों से दक्षिणेश्वर आना-जाना शुरू किया था। उन्हें एक दिन पंचवटी में ध्यान करते देखकर श्री रामकृष्ण ने कहा,—"अरे लेटो, जिसका ध्यान कर रहे हो वह तो नहबत में रोटी बेल रही है।" यह बात सुन, ध्यान छोड़कर लाटू श्री रामकृष्ण के पीछे-पीछे चलने लगे। उन्होंने उन्हें सारदा देवी के समीप ले जाकर कहा,—"यह लड़का अच्छा है, तुम्हारा आँटा गूँथ देगा।" यही लाटू बाद में स्वामी अद्भुतानन्द के नाम से परिचित हुए थे।

उन दिनों दक्षिणेश्वर में किस आनन्द का स्रोत बहने लगा था, वह बात तो मौखिक रूप से कहने से समझने योग्य नहीं है। दिन पर दिन सौ-सौ व्यक्ति आते हैं—श्रीरामकृष्ण की संगति पाकर धन्य होने के लिए। बालक आते हैं, वृद्ध आते हैं, स्त्रियाँ आती हैं; पुरुष आते हैं, गृहस्थ आतें हैं, संन्यासी आते हैं, भिखारी आते हैं, फिर राजे-महराजे भी आते हैं। दिन-रात उनके घर में भीड़ लगी ही रहती है। साथ-साथ चलता है भजन-कीर्त्तन, भगवान विषयक विवेचन। पंडित वे थे नहीं, शास्त्र पढ़े नहीं, श्लोकों की आवृति भी नहीं करते थे। किन्तु, उनके श्रीमुख से जो कुछ निकलता, वही था वेद, बाईबल, कुरान और पुराणों का सार तत्त्व। उसे सुनकर भक्त आनन्द पाते थे, दुःखियों के दुःख मिट जाते थे, शोक से कातर प्राणी पाते थे सान्त्वना और घोरविषयी व्यक्तियों के प्राण में दप् से जल उठती थी वैराग्य की दीपशिखा। श्रीरामकृष्ण थे एक आश्चर्यजनक साधु! वे केवल दिन-रात अपने मुख को गम्भीर किये रहते हों—सो नहीं। हास-परिहास का तमाशा लगाकर समय-समय पर वे अपने बालक भक्तों के साथ हास की हाट लगा देते थे। उनकी हँसी के कल्लोल से उनका छोटा कमरा जैसे फट पड़ता था। उस समय कौन कह सकता था कि कुछ ही देर पहले यही व्यक्ति भगवान के भाव में विभोर होकर जगत् को भूल गये थे।

सारदादेवी दिन-रात केवल काम ही करती थीं—सो नहीं। श्रीरामकृष्ण के घर में जो सब भजन-कीर्त्तन, भगवान के प्रसंग चलते, उन सबके आनन्द से भी वे वंचित नहीं होती थीं। श्री रामकृष्ण के आवास-गृह से नहबत घर कोई अधिक दूर नहीं है। इस घर के उत्तर का दरबाजा खोलने से भीतर की अनेक वस्तुएँ नहबत से देखी जा सकती हैं। यह दरबाजा प्रायः खुला रहता था और सारदादेवी, नहबत के बरामदे पर जो बाँस की टाट लगी हुई थी उसमें फाँककर 'खड़ी-खड़ी श्रीरामकृष्ण की ओर घंटों देखती रहती थीं। देखते-देखते देखने की और लालसा मिटती नहीं; सुनते-सुनते कानों को और तृप्ति होती नहीं थी। दिन पर दिन खड़ी रहने से उनके पाँवों में वात-रोग हो गया था। उस समय की बात उन्होंने अपने श्रीमुख से इस प्रकार कही है,—"दक्षिणेश्वर के वे सब दिन ही क्या चले गये माँ! ठाकुर कीर्त्तन करते थे, मैं नहबत के पर्दे के भीतर से देखती हुई घटों खड़ी रहती। हाथ जोड़कर प्रणाम करती, क्या आनन्द था! दिन-रात लोग आते हैं, और भगवान की बातें होती हैं। नाच-गान, भावसमाधि दिन-रात ही हो रही है। ठाकुर के समीप कितने ही भक्त आते, गान-कीर्त्तन होते; उन्हें सुनती और सोचती, मैं इन्ही भक्तों में एक होती तो ठाकुर के समीप अधिक रह पाती, कितनी वार्ताएँ सुनती!"

पहले ही कह चुका हूँ, सारदादेवी के सुख-स्वाच्छन्द्य के लिए श्रीरामकृष्ण अपने साध्य के अनुसार चेष्टा करते थे। वे सारदादेवी को कहते, "वनपाखी रात दिन पिंजड़े में रहने से वातरोग से ग्रस्त हो जाता है; बीच-बीच में टोले-मुहल्ले में निकल जाना।" दोपहर को जब

लोग विश्राम करते तब वे सारदादेवी को कहते, "अभी जाओ, बाहर में कोई नहीं है।" सारदादेवी खिड़की के फाटक से बाहर निकल जातीं और गृह-स्वामिनी या मुहल्ले के अन्य किसी के घर में बातचीत कर संध्या तक समय व्यतीत करतीं और आरती के समय नहबत घर में लौट आतीं।

श्रीरामकृष्णदेव के प्रसंग में सारदादेवी ने एक दिन कहा था, "ठाकुर तो अमन त्यागी थे, फिर भी मेरे लिए उनमें भावना थी। एक दिन मुझसे पूछते हैं, कितने रुपये होने से तुम्हारा हाथ-खर्च चलता है ?' मैंने कहा, यही पाँच-छः रुपये होने से ही चल जाता है। फिर जिज्ञासा करते हैं, 'शाम को कितनी रोटियाँ खाती हो ?' मैं तो लज्जा से बोली नहीं। कैसे बोलती ! इस सम्बन्ध में बार-बार पूछते हैं। इसी से बोलना पड़ा—यही पाँच-छः रोटियाँ खाती हूँ।"

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के सेवा-सम्पर्क के सम्बन्ध में हुई एक घटना का उल्लेख करता हूँ। इसमें भी रामकृष्ण के ऊपर अगाध प्रेम के साथ ही पतित, दुःखियों के प्रति सारदादेवी की अपरिसीम करुणा हम देख पायेंगे। एक दिन रसोई पकाने के बाद वे श्रीरामकृष्ण का भोजन नहबत घर से श्रीरामकृष्ण के घर में ले जाती थीं, उस समय उनके निकट उपस्थित एक स्त्री ने आग्रह कर भात की थाली उनके हाथ से ले ली। उस स्त्री को चरित्र-हीना जानते हुए भी उसे थाली नहीं देना उनसे पार नहीं लगा। भात की थाली रखकर वह स्त्री चली गयी। सारदादेवी श्रीरामकृष्ण को भोजन कराने बैठीं। किन्तु वे हीन स्वभाव के लोगों की छुई हुई वस्तु खा नहीं पाते थे। अपनी आँखों से छूते नहीं देखने पर भी उन्हें इस प्रकार के लोगों की छुई वस्तु देने पर ही वे समझ जाते थे। आसन पर बैठकर उन्होंने हाथ मोड़ लिया और कहा,—"यह क्या किया, कहो तो ? खा जो नहीं पाता हूँ ! उसके हाथ का खाना क्यों दिया ? तुम क्या जानती नहीं हो कि उसका स्वभाव खराब है ?" उन्होंने कहा,—"क्या करूँ, कहिए ? उसने ऐसी जिद कर दी कि नहीं देते पार नहीं लगा। किसी तरह थोड़ा खा लीजिए।" श्रीरामकृष्ण ने कहा—"खा जो नहीं पाता हूँ ! कहो, फिर कभी ऐसा करके जिस-तिस के हाथों खाना तो नहीं दोगी ?" उत्तर में उस असीम करुणामयी देवी ने कहा,—"इस प्रकार का सत्य नहीं कर पाऊँगी। 'माँ' कहकर किसी के कुछ कहने पर मैं तो 'ना' कह नहीं पाती हूँ।" श्रीरामकृष्ण ने कोई और बात कहे बिना थोड़ा कुछ खा लिया।

दशम अध्याय

पति-पत्नी

श्री रामकृष्ण की एक प्रधान शिक्षा है कि कामिनी-कांचन का त्याग नहीं कर पाने से ईश्वर-लाभ नहीं होगा। इस कथन का अर्थ जो ठीक-ठीक नहीं समझते उनके मन में होता है मानो श्रीरामकृष्ण नारी-जाति से खूब घृणा करते थे। विशेषकर आजकल के स्त्री-पुरुषों का एक वर्ग, जो अपने देश की शिक्षा-सभ्यता की कोई चर्चा नहीं करता, जिसे विदेशी चाल चलन और समाज विषयक नया-नया मत खूब मनोरम प्रतीत होता है, वह वर्ग तो यह बात सुनते ही चौक उठता है। कामिनी-कांचन-त्याग कहते ही इस वर्ग के लोग क्या समझते हैं—इस बात के विस्तृत रूप से विवेचन का यह स्थान नहीं है। तब उनके (श्रीरामकृष्ण के) सम्पूर्ण जीवन के आचरण को देखने से सभी जान पायेंगे कि नारी जाति के ऊपर उनकी कैसी अपार श्रद्धा थी। उस प्रकार की श्रद्धा बहुत कम लोग ही स्त्रियों के ऊपर दिखा पाते हैं। सारदादेवी के प्रति जो गंभीर प्रीति, सम्मान और श्रद्धा वे बराबर प्रदर्शित करते रहे, केवल उन्ही की विवेचना करने से स्पष्ट हो जायगा कि नारी जाति को वे किस दृष्टि से देखते थे।

हिन्दू नारियाँ दीर्घकाल से पति को देवता की भाँति सम्मान करती आयी हैं। फिर भी पुरुषों का एक वर्ग मानता है कि उनका स्वभाव-चरित्र चाहे जैसा क्यों न हो, स्त्रियाँ सदैव दासी की भाँति उनका हुक्म तामील करती रहें, यह ठीक नहीं। इस प्रकार की एक अनुचित धारणा पुरुषों के मन में आने से, स्त्रियों के ऊपर पुरुषों द्वारा अपने कर्तव्य को भूलकर स्त्रियों को हीन-भाव से देखने के फलस्वरूप, देश का अधःपतन हो गया है।

श्रीरामकृष्ण और सारदादेवी के बीच हम एक अद्भुत् सम्बन्ध देखते हैं। सारदादेवी बहुत दिनों तक श्री रामकृष्ण को अपना ईष्टदेव मानकर उनकी पूजा करती थीं। फिर दूसरे पक्ष से श्रीरामकृष्ण भी सारदादेवी को अपनी ईष्टदेवी के रूप में देखते थे। उन्होंने किसी दिन सारदादेवी को 'तू' नहीं कहा। एक दिन भूल से 'तू' कहने के कारण वे किस प्रकार दुःखित हुए थे, वह कथा कहता हूँ।

सारदादेवी एक दिन सांध्य-वेला में श्रीरामकृष्ण का खाना उनके घर में रखने जा रही थीं। वे उस समय अपने छोटे तख्तपोश (पलंग) के ऊपर आँखें मूँदकर लेटे थे। उनकी भतीजी लक्ष्मीदेवी उन दिनों दक्षिणेश्वर में थीं। उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) समझा था, लक्ष्मी खाना देने आयी है। उन्होंने आँख मूँदे हुए ही कहा, "अरी, दरबाजा बन्द किये जाओ।" बारामदे से उनकी बात का उत्तर आया, "हाँ, दरबाजा लगा रखा है।" गले के स्वर से उन्होंने समझा—सारदादेवी आया थीं, लक्ष्मी नहीं। तभी बिछावन छोड़कर बारामदे में वे सारदादेवी के सामने आ खड़े हुए—अत्यंत संकुचित भाव से, जैसे कितना अपराध किया हो। कहा, "अहा, तुम हो! मैंने समझा था लक्ष्मी है। अतः देखो, मन में कुछ लाना नहीं।" सारदादेवी ने कहा, "वैसा कह दिया तो क्या हुआ!" किन्तु श्रीरामकृष्ण ने क्या उससे सांत्वना पायी? दूसरे दिन सवेरे नहबत के समीप जाकर सारदादेवी को पुकार कर कहा, "देखो, सारी रात सोचते-सोचते मुझे नींद नहीं आयी। कैसे इस प्रकार की कठोर (रुक्ष) बात कह दी!" इससे हमलोग समझते हैं कि वे सारदादेवी को जिस प्रकार प्रेम करते थे उसी प्रकार उनका आदर भी करते थे।

एक बार सारदादेवी नहबत में प्रायः अकेली थीं। उनके समीप एक बूढ़ी आयी। यौवन-काल में उस बूढ़ी का चरित्र बुरा था। उसके आने पर सारदादेवी उसके साथ बातें करतीं। उसे एक दिन देखकर श्रीरामकृष्ण ने कहा, "वह यहाँ क्यों!" सारदादेवी ने उत्तर दिया, "वह अभी तो अच्छी बातें ही बोलती है। कितनी हरि-कथा कहती है—इसमें दोष क्या है!" श्रीरामकृष्ण ने कहा, "छिः छिः! वह तो बुरी है,, उसके साथ क्या बात चीत! सौ बार, राम-राम!" इस वार्तालाप के बाद भी वह बूढ़ी प्रायः ही सारदादेवी के समीप 'माँ' कहती हुई आकर खड़ी हो जाती। वे उसे बैठने को कहतीं, जब जो होता, यत्न करके उसे खाने को देतीं। श्रीरामकृष्ण भी देखते, किन्तु उन्होंने और कोई बात किसी दिन नहीं कही, अथवा विरक्ति का भाव तक कभी नहीं दिखाया। अतएव, किसी को कोई अनुचित करते देखने पर वे कभी चुप नहीं रहती थीं।

इस घटना का उल्लेख कर सारदादेवी ने एक बार कहा था, "बाद में कुबुद्धि होती है, इसी भय से वे उन सब लोगों के साथ बातचीत तक करने से निषेध करते थे। इतना करके उन्होंने मेरी रक्षा की है।"

इस उदाहरण से हमलोग जान पाते हैं कि सारदादेवी का मन दृढ़ है, यह बात वे अच्छी तरह समझते थे; तथापि उपर्युक्त बातें उन्होंने कही थीं केवल एक आदर्श सिखाने के लिए। यह आदर्श है संसार में सुख-शान्ति से वास करने के लिए परिवार में जिससे किसी असत् विषय की चर्चा न हो या असत् चरित्र के व्यक्ति प्रश्रय नहीं पायँ, इस विषय को सर्वदा लक्ष्य में रखना होगा। और, इस कार्य में पति-पत्नी दोनों व्यक्तियों का ही समान दायित्व है।

सारदादेवी को अपने दायित्व का बोध और आत्म-मर्यादा का ज्ञान प्रचुर था। उनकी सीमा में, जिस काम

का करना उनका विशेष दायित्व था, उसमें स्वयं श्रीरामकृष्ण के हस्तक्षेप को भी वे सह नहीं पाती थीं। श्रीरामकृष्ण उनके इस भाव को काफी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। भक्तगण जो फल, सन्देश (बंगाल की एक विशेष प्रकार की प्रसिद्ध एवं सुस्वादु मिठाई) आदि लाते उन सब को सारदादेवी खूब यत्नपूर्वक रखतीं एवं श्री रामकृष्ण तथा उनके भक्त शिष्यों को देतीं। स्वयं नाम-मात्र को लेतीं। अधिक संचय नहीं करतीं। किसी वस्तु के अधिक मात्र में आने पर मुहल्ले के बच्चों में उसे बाँट देतीं। पता नहीं क्यों, एक दिन श्रीरामकृष्ण के मन में हुआ कि सारदादेवी अत्यधिक खर्च करती हैं। उन्होंने कहा—"इतना खर्च करने से कैसे चलेगा ?" उनकी बात से सारदादेवी ने समझा, उनका कार्य श्रीरामकृष्ण पसन्द नहीं करते हैं। अतएव, जैसे ही यह बात सुनीं वैसे ही बिना कोई उत्तर दिये वे श्रीरामकृष्ण के घर से नहबत की ओर चल पड़ीं। उनके मन में जैसे यह भाव जगा—'देना-खिलाना तो माताओं का कार्य है, पुरुष इस बात को लेकर माथापच्ची क्यों करें ?' उन्हें चली जाती देखकर श्रीरामकृष्ण ने विह्वल होकर कहा—"अरे रामलाल, अपनी चाची को जाकर शान्त कर। उनके क्रोध करने से (अपनी ओर हाथ से दिखाकर) इसका सबकुछ नष्ट हो जायगा।"

जो सब बालक-भक्त साधन-भजन के निमित्त श्रीरामकृष्ण के निकट ठहरते, उन सब को रात के खाने में किसे कितनी रोटियाँ देनी होंगी यह बात उन्होंने सारदादेवी को कह दी थी। बाबूराम (जो बाद में स्वामी प्रेमानन्द के नाम से विख्यात हुए) के लिए चार रोटियाँ निर्धारित थीं। एक दिन बाबूराम भोजनोपरान्त श्रीरामकृष्ण के समीप आये। उन्होंने जिज्ञासा की,—'हाँ रे बाबूराम, कितनी रोटियाँ खायीं ?"

"छः रोटियाँ।"

"इतनी अधिक क्यों खायीं ?"

"माँ ने जो दीं।"

इतना अधिक खाना उन्होंने पसन्द नहीं किया। बात सुनते ही पाँवों में चप्पल डालकर फट्-फट् करते हुए नहबत घर में आ उपस्थित हुए। कहा—"हाँ जी, क्या तुम बच्चों को मनुष्य नहीं बनने दोगी ? इस उम्र में यदि इतना अधिक खायगा तो अपना तेज कहाँ रखेगा ?" उनकी बात से लगा जैसे सारदादेवी ने कोई एक अनुचित कार्य किया है और वे (श्रीरामकृष्ण) उन्हें सावधान करने आये हैं। ये बातें सारदादेवी के प्राणों को कचोट गयीं। वे बोलीं,—"एक दिन दो रोटियाँ अधिक देने से जब आपको इतनी चिन्ता हो गयी है—तो उन लोगों के लिए आपको और चिन्ता नहीं करनी है। मैं ही उन लोगों को देखूँगी। आप उनलोगों के खाने के सम्बन्ध में कुछ और नहीं बोलें।" श्रीरामकृष्ण बिना और कुछ बोले, थोड़ा हँसते हुए, घर लौट आये।

बच्चों को मैं देखूँगी, यह जो उन्होंने कहा, यह बात कहने की योग्यता उनमें थी। श्रीरामकृष्ण भी यह बात जानते थे। इस संसार में जिस कार्य के लिए उनका अवतरण हुआ था, उनके सशरीर उपस्थित नहीं रहने पर स्वामी विवेकानन्द के मतानुसार, उस कार्य को करने का भार उन्होंने सारदादेवी को दिया था। अपने शरीर के रहते ही प्रधान शिष्यों में से किसी-किसी को सारदादेवी से दीक्षा लेने का आदेश उन्होंने दिया था।

श्रीरामकृष्ण की उपयुक्त सहधर्मिणी होने के लिए सारदादेवी ने हर प्रकार से चेष्टा की थी। पतिदेव के जीवन के आदर्श को हर प्रकार से उन्होंने अपना बनाकर ग्रहण किया था। श्रीरामकृष्ण के जीवन की एक प्रधान विशेषता थी—त्याग। इस त्याग-भाव को बड़ी सहजता से सारदादेवी ने अपना लिया था। एक घटना का इस संदर्भ में उल्लेख करने से यह बात ठीक से समझ में आ जायगी।

लक्ष्मी नारायण नामक एक मारवाड़ी भक्त श्रीरामकृष्ण के पास आते-जाते थे। एक दिन उनके बिछावन की चादर मैली देखकर उक्त भक्त ने दस हजार रुपये उनके नाम से बैंक में जमाकर देना चाहा, जिससे उन रुपयों की सूद से उनकी सेवा हो पाती। जो एक पैसा तक नहीं छू पाते थे, मनप्राणों से सोलहों आने जो भगवान

के ऊपर निर्भरशील थे, उनके माथे पर, यह बात सुनते ही जैसे गाज गिर पड़ी । वे रुपये लेंगे, और इतने रुपये ! पहले तो उन्हों ने भक्त का खूब तिरस्कार किया, फिर उनके मस्तिष्क में एक युक्ति उपजी । उन्होंने सारदादेवी के मन की अवस्था की परीक्षा लेनी चाही । उन्हें पुकारकर कहा,—"यह भक्त इतने रुपये देना चाह रहा है । मैं संन्यासी हूँ—मैं तो ले नहीं पाऊँगा । इच्छा हो तो तुम ले लो ।" इतने रुपये एक साथ पाने पर हमलोगों में से कोई भी आह्लाद से झूम जाता । नहीं क्या ! किन्तु सारदादेवी ने क्या उत्तर दिया ! उन्होंने कहा,—"नहीं, यह नहीं हो सकेगा । जैसा आपका लेना, वैसा मेरा भी लेना । मेरे पास रुपयों के रहने से वे आपके ही काम में लगेंगे—और मेरे मन में होगा कि हमलोगों को रुपये हैं ।" उत्तर सुनकर श्रीरामकृष्ण काफी खुश हुए, यह बात और नहीं कहने पर भी चलेगा ।

महापुरुष आते हैं, समय के अनुसार उपयोगी आदर्श लोगों को दिखाने । श्रीरामकृष्ण ने जन्म ग्रहण किया था इस युग के पथहारा मानव को पथ दिखाने के लिए, सब को सत्य का सन्धान देने के लिए ! उस युग में राजा के पुत्र सिद्धार्थ वैराग्य की प्रेरणा से पिता-माता-स्त्री-पुत्र सब को निराश्रय छोड़कर सत्य के संधान में वनवासी हुए थे । ज्ञान का आलोक प्राप्त कर फिर जब वे संसार में लौट आये तथा संसार के कितने ही दुःखी तापी-प्राणी जब उनकी करुणा पाकर धन्य होन लगे, तब गोपा ने भी उनकी दया पायी थी । किन्तु उन्हें दूर ही रहना पड़ा भिक्षुणी के आश्रम में—पति के साथ रहने या पति की सेवा करने का सौभाग्य उन्हें नहीं मिला । पतित तापित के प्रति करुणा ने माता बंग भूमि के प्यारे पुत्र निमाई को जिस दिन घर छोड़कर पथ पर खींच लिया था, उस दिन उन्होंने विष्णुप्रिया का सदा के लिए परित्याग कर दिया था । रास्ते-रास्ते हरिनाम का वितरण कर उन्होंने हजारो-हजार पापी-तापियों का उद्धार किया था, कितने ही दीन-हीनों अधमों को अपनी गोद में लेकर उन्हें धन्य किया था । किन्तु, दुःखिनी विष्णुप्रिया को केवल मन ही मन अपने पति की पूजा कर सन्तुष्ट रहना पड़ा—प्रत्यक्ष रूप से पति की सेवा करने का सौभाग्य उन्हें फिर नहीं मिला ।

किन्तु, इस युग के मनुष्यों के लिए श्रीरामकृष्ण ने एक नया आदर्श दिखाया । संसार के समस्त पदार्थों तथा भोग-सुखों को मिथ्या समझने एवं ईश्वर-लाभ को ही मानव जीवन का एकमात्र उद्देश्य जानने पर भी उन्होंने विवाह किया था । निश्चय ही, इस के बाद कुछ दिनों तक साधन-भजन में वे एकाएक डूब गये थे । उस समय संसार का ज्ञान ही उन्हें नहीं था, परन आदरणीय जो अपनी देह है, उसे भी वे भूल गये थे, फिर पत्नी की बात ही वे अपने मन में कैसे रखते ! किन्तु युवती पत्नी जब स्वयं ही उनके सामने आ उपस्थित हुई तब उन्होंने उन्हें दुरदुराकर हटा नहीं दिया, बल्कि बड़े यत्न से अपने निकट स्थान दिया । फिर भी पति-पत्नी का सम्पर्क कहने से लोग जो समझते हैं, ऐसा सम्पर्क उन लोगों में कभी नहीं हुआ । जिस युग में मनुष्य ने ईश्वर, अपर जीवन, धर्म-कर्म सबको व्यर्थ मानना आरम्भ कर दिया, जब शिक्षित-सभ्य लोगों के एक बड़े हिस्से ने भोग-विलास, देह के पाँच प्रकार के सुख इत्यादि को ही मानव जीवन का लक्ष्य कह कर धारण कर लिया तब श्रीरामकृष्ण पति-पत्नी के सम्बन्ध का एक नूतन आदर्श दिखाने आये । गृहस्थ का जीवन कैसा होना उचित है, यह उन्होंने सारदादेवी के साथ अपने अपरूप सम्बन्ध के माध्यम से दिखाया । भक्तों के प्रति उनकी उक्ति, थी "मैं यदि सोलह आना करूँगा तभी तुम लोग एक आना करोगे ।" क्रमशः

दिव्य योजना

—राम नगीना सिंह 'विकल'

शीर्षक देखकर चौंके मत। यह न तो किसी ज्योतिषी की भविष्यवाणी है न किसी तथा कथित भगवान सन्त की घोषणा है। यह सत्य है और इस सत्यका प्रमाण संसारको जो मिलेगा, वह भी योजनाबद्ध रूपमें। यह लेखक इस सत्य से पूर्णतः अवगत होकर ही पाठकों को इस रहस्य से अवगत कराने की चेष्टा कर रहा है। इस योजनाके कतिपय चरण हैं, जिन्हें जान लेना चाहिए।

स्पिरिचुअल हीलिंग सेन्टर (Spiritual Healing Centre) नाम की कोयम्बटूर में एक संस्था रही, जो अपना काम समाप्त करके १९६६ में बन्द हो गयी। "रोमान्स ऑफ ए सोल', "लाइफ ऑफ राम राम', 'हाउ आई फाउन्ड गॉड' ये तीनों पुस्तकें वहींके प्रकाशन है। इधर बाजार में ये पुस्तकें नहीं आयीं; पर संसार में हजारों लोगों को मिलीं। 'हाउ आई फाउन्ड गौड', जो लगभग दो हजार पृष्ठों की पुस्तक है, गोपनीय है। उसके १४०० पृष्ठ तक तो कुछ लोगों को—उक्त संस्था के सदस्यों को, देखने को मिले, पर शेष ६०० पृष्ठ किसी मौन साधक के पास सुरक्षित पड़े हैं और संसार के समक्ष वे पूर्ण निरस्त्रीकरण के तुरत बाद ही प्रस्तुत किये जायेंगे। कोई उन्हें देख नहीं पाया। उन गुप्त रखे गये ६०० पृष्ठों की सत्यता प्रमाणित करनेके लिए १४०० वाले पृष्ठोंकी जिल्दमें दो तीन स्थलोंपर बतला दिया गया है कि How I Found की कुल पृष्ठ संख्या दो हजार है।

श्री के० एस० अय्यर० ने १९६६ में अपने भौतिक शरीरका परित्याग किया। श्री एम० के० स्पेंसर ने १९६० में निर्वाण लिया। वे ही इस युगके अवतार हैं और उन्हीं के द्वारा 'हाउ आइ फौंड गॉड' लिखित है। हाँ, इस पुस्तक में श्री स्पेन्सर का अपना एक भी शब्द नहीं है, आध्यात्मिक लोकके दिव्यात्माओं के तथा ईश्वर के संदेशों से ही यह पुस्तक भरी है।

रोमांस ऑफ ए सोल इसी युगावतार के तीन जन्मोंकी अति संक्षिप्त कथा है। यह पुस्तक आध्यात्मिक लोक निवासी सुन्दर ने (अथरीने) लिखायी और इसकी छोटी भूमिकामें श्री एच०एस० स्पेन्सरने इस पुस्तकको 'हाउ आइ फौंड गॉड' की भूमिका के रूप में मानकर अधिक जानकारी के लिए उसकी ओर संकेत किया है। भूमिका में तथा पुस्तक के अन्तमें श्री एम० के० स्पेन्सरको अवतार घोषित किया गया है। यह पुस्तक १९५४ में प्रकाशित हुई। इस पुस्तिकामें यह भी बतलाया गया है कि ईश्वर के आदेश से रामराम नामक दिव्य गुरु श्री स्पेन्सर के जन्मकाल से ही उनपर अपनी दृष्टि रखते चले। सूत्र रूप में कथा यों है—तेरहवीं सदीमें ग्रीस में पेट्रिसियो नाम के एक महान सन्त हुए। सब तरहसे वे उन्नत जीवात्मा तो रहे, पर एक कमी उनमें यह रही कि अन्य धर्मोंके वे आलोचक रहे। तन-त्यागके बाद आध्यात्मिक लोक में गये, दिव्यों ने उनका स्वागत किया। परिमार्जन आवश्यक था। कई सौ वर्ष वहाँ रहने के बाद उन्हें पुनः धरतीपर जन्म लेने को बाध्य होना पड़ा। दक्षिण भारतके एक नगरमें बच्ची के रूपमें उनका ब्राह्मण परिवार में जन्म हुआ। बीसकी अवस्थामें चालीसके प्रौढ़ व्यक्ति से उनका विवाह हुआ। विवाह करना तो वे चाहती ही नहीं थी पर सामाजिक और पारिवारिक दबाव से विवाह हुआ। पतिके प्रति किंचित् भी आकर्षण नहीं था, पर पतिको स्वामी मानकर सारे व्यवहार करती रहीं। एक ही बात में वे स्वतंत्र व्यवहार करती रहीं—किसी भी जाति के पड़ोसी के रोग-कष्ट में अपनी सेवा। नारी होना ही उनके लिए बचाव था, अन्यथा वे समाजसे बहिष्कृत कर दी गयी होतीं। सब

अनाथ बच्चोंको उनसे मातृस्नेह प्राप्त था। उनकी भी अपनी सन्तानें थीं। वे इतनी कोमल हृदय थीं कि अपने बच्चोंके अवगुणोंपर भी ध्यान नहीं देतीं। परिणामतः सन्तानें सुपथगामी न हो सकीं। मूलमें इसका कारण सन्तानके प्रति उनका मोह ही रहा। एक दिन पूर्ण आयु भोगकर वे चल बसीं। कोई शोक-सभा नहीं, कोई स्मृति-चिह्न नहीं, कोई नाम स्मरणका साधन नहीं। हाँ, उनका नाम भगवान के यहाँ स्वर्णाक्षरोंमें अवश्य लिखित रहा। कहाँ पेट्रिसियोके रूपमें एक महान धर्मगुरु की मान्यता और यूरोपके कई देशोंमें फैली ख्याति और दूसरे जन्ममें उसीका वन्यकुसुम-सा खिलकर चुपचाप धूलमें विसर्जित हो जाना। पेट्रिसियोका स्मारक आज भी इटलीमें है पर उस नारीका नाम कोई नहीं जानता। अस्तु, इस नारी जीवन में जहाँ एक धार्मिक भूलका सुधार हुआ वहीं एक नयी भूल भी आ गयी—मोह। दिव्यलोकमें उनका स्वागत हुआ और पूर्व जन्म की अपेक्षा उस नारी जीवनमें वे अधिक उन्नत जीवात्मा मानी गयीं। हाँ अपूर्णता तो थी ही। जन्म लेना पड़ा पूना नगर में। एक पारसी परिवार में उन्होंने जन्म लिया। वही हैं श्री एम० के० स्पेन्सर जो संसार छोड़कर जा चुके हैं, पर वही विश्वधर्म देनेवाले हैं। आश्चर्य तो है, फिर भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि रहस्यात्मक मार्ग होते ही हैं प्रभुके।

इस 'रोमांस ऑफ ए सोल" में यह बतला दिया गया है कि ऋषि रामरामके अतिरिक्त ईसा, बुद्ध, कृष्ण, जरथुस्त्र आदि दिव्यात्माओंको ईश्वरने एम० के० स्पेन्सर की सहायता करनेका निर्देश किया।

श्री एम० के० स्पेन्सर संसारमें नहीं रहनेपर कैसे विश्वधर्म स्थापित करेंगे और संसार के मान्य अवतार घोषित होंगे, यह बतलानेके पहले उनके दिव्य गुरु ऋषि राम रामकी जानकारी भी कुछ शब्दोंमें करा देना यहाँ आवश्यक है।

सम्राट अशोक के समय में पाटलिपुत्र से कुछ दूर सगिरी नामक कोई ग्राम था, जो अब नहीं रह गया। उस गाँवमें अथरी वंशमें अथरी नामक एक सम्पन्न ब्राह्मण थे। दश हजार एकड़ भूमि, स्वर्ण-रजत-राशि वाला तहखाना और लगभग दो हजार मवेशीके वे स्वामी रहे। सनातनी ब्राह्मण, वैदिक कर्मकाण्डमें विश्वास, प्रत्येक नये विचार के विरोधी, यही अथरीका जीवन-रूप रहा। बौद्ध संस्कृति और ग्रीस सैन्यशक्तिका प्रभाव भी जनमानसपर पड़ रहा था। उसी वातावरण में नन्द रूप का जन्म हुआ अथरी के पुत्रके रूपमें। माताका नाम गज्जिनी था। दश वर्षकी वय होनेपर नन्दका उपनयन संस्कार हुआ। गायत्री मंत्रके उच्चारण कराते समय नन्दरूपको ऐसा लगा कि उसकी आँखोंके आगे एक-एककर सूक्ष्म लोकों के छाया-चित्र आते और विलीन होते जा रहे हैं।

बीच की रोमांचपूर्ण घटनाओं की चर्चा छोड़कर स्थान संकोच के कारण, इतना कह देना आवश्यक है कि नन्दरूप की नियुक्ति सम्राट के राजवैद्य के रूप में हुई और अपने भौतिक जीवन के ४२ वें वर्ष में उन्होंने बौद्ध भिक्षुक के रूप में निर्वाण लिया। निर्वाण लेने के पहले ही वे काशी में सदानन्द सद्गुरु से दीक्षित होकर और अर्हत स्थिति का लाभ पाकर जीवन्मुक्त हो चुके थे। अपनी बौद्ध भिक्षुणी माता गज्जिनी की भविष्यवाणी के अनुसार अपने भिक्षु-जीवन के 6 वें वर्ष में उन्हें अपने गुरु की प्राप्ति देश विदेश के भ्रमण के उपरान्त हुई थी। शताब्दियों तक आध्यात्मिक लोक में रहने के बाद उन्हें विश्व के आध्यात्मिक विकास को गति प्रदान करने को ईश्वर द्वारा नियुक्त किया गया।

सिरिचुअल हीलिंग सेन्टर कोयम्बटूर के वे आत्म-निदेशक हुए। हुआ यह कि कुछ मित्रों ने मिलकर पारलौकिक जीवों से प्लैंचेट-ओझा बोर्ड-स्वयंलेखन आदि विधियों द्वारा सम्पर्क करने के लिए एक आध्यात्मिक गोष्ठी की स्थापना की। कुछ ही दिनों के अभ्यास के बाद एक माध्यम को गोष्ठी में सन्देश इस आशय का मिला कि "मैं दिव्य गुरु ऋषि रामराम हूँ और आज से मैं तुम्हारी इस संस्था के संरक्षक का भार ग्रहण कर रहा हूँ।"

यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि ऋषि राम राम नन्दरूप ही रहे। उनके पिता अथरी ने जो 'लाइफ

ऑफ राम राम' लिखवाया, उसमें इस नाम का रहस्य सांकेतिक रूप में बतला दिया गया है। मैं इसे स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ। सामान्य माध्यम केवल पारलौकिक (निम्न सूक्ष्म लोक के) जीवों से ही सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। ऊँचे लोकों के दिव्यात्माओं से बहुत उन्नत माध्यम का ही सम्पर्क हो सकता है। संसार के आध्यात्मिक विकास को गति प्रदान करने के लिए उन्हें नीचे उतरना पड़ा। परलोक के एक बहुत उन्नत जीवात्मा ने अपने सूक्ष्म इथरिक शरीर का त्याग करके ऊँचे लोक में जाने की तैयारी की, ठीक उसी समय, शरीर के परमाणुओं के बिखरने के पहले ही, नन्दरूप की आत्मा उससे संलग्न हो गयी। उस शरीर का त्याग करने वाले 'राम राम' का निरन्तर, अजपा जाप, करते रहे, इसलिए उस शरीर के परमाणु-परमाणु 'राम राम' स्पन्दन लहराते रहे। अतः नन्दरूप ने 'राम राम नाम ही अपने लिए रख लिया। वह अंगरेजी के एक बड़े विद्वान थे, इसलिए ऋषि राम राम ने अपने संदेश देने के लिए अंगरेजी ही रखनी सुविधाजनक समझी और स्पिरिचुअल हीलिंग सेन्टर के सचिव श्री के० एस० डी० अय्यर भी अंगरेजी के विद्वान रहे। अतः अंगरेजी ही माध्यम रखी गयी इस कार्य के लिए।

स्पिरिचुअल हीलिंग सेन्टर द्वारा रोगियों की चिकित्सा भी होती रही। प्रतिदिन एक घण्टा गम्भीर ध्यान-पूजा होती। और वेदी पर रोगियों के रोग-विवरण रखे जाते। रामराम अपना आशीर्वाद और निर्देश दिया करते। असाध्य रोगी स्वास्थ्य लाभ करते रहे। इसका दूसरा काम प्रकाशन का रहा। श्री एम० के० स्पेन्सर की दर्जनों पुस्तकों का प्रकाशन इस संस्था से हुआ। संस्था के सचिव रहे श्री के० एस० डी० ऐयर।

अब कुछ बातें श्री एम० के० स्पेन्सर के (युगावतार के) सम्बन्ध में। आरम्भ में वे नास्तिक रहे। यह आश्चर्य की बात है कि पेट्रिसियो जैसा धार्मिक जीवात्मा अपने दूसरे जन्म में अपनी धार्मिक कट्टरता को छोड़ चुका था और नारी रूप में आकर बिना किसी भेद-भाव के सेवा में तत्पर रहा, वही तीसरे जन्म में नास्तिक हो चला। फिर भी ऐसा आश्चर्य सामान्य जन को ही हो सकता है। अध्यात्मविद् के लिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं। जीवात्मा सब प्रकार के अनुभवों से ही पूर्ण होता है। हाँ, पिछले जन्म के अनुभव संस्कार रूप में रहते ही हैं। श्री एम० के० स्पेन्सरमें पिछले जन्मके सारे गुण संस्कार रूपमें आये ही थे। केवल उनके जाग्रत हो जाने का कोई कारण उपस्थित होना चाहिए था, जो हुआ। उनके नगरमें कोई रहस्यात्मक व्यक्ति आया, जो दूरस्थ या दूसरे बन्द कमरेकी वस्तुओं को प्रत्यक्षदर्शी-सा ठीक-ठीक बतला देता था। चर्चा फैली और मित्रोंके दबावसे श्री स्पेन्सर उसे देखने गये। कुछ चमत्कार देखकर उन्होंने कुतूहलवश उस रहस्यात्मक व्यक्ति से यह जानना चाहा कि उनके अपने जीवन में कोई विशेष बात या गुणकी संभावना भी है या नहीं। उत्तर मिला कि उनमें माध्यमता है और अभ्यास करें तो ऊँचे लोकों से उनका संपर्क हो सकेगा। श्री स्पेन्सरको विश्वास तो इस बातमें हुआ नहीं, किन्तु कुतूहलवश उन्होंने कागज-पेन्सिल हाथमें लेकर किसी मृत मित्रका आवाहन किया। अश्चर्यजनक रूपसे पेन्सिल कागज पर लिखने लगी। जो संदेश इस प्रकार लिखित हुआ, उससे पता चला कि ऋषि राम राम संदेश देनेवाले दिव्यात्मा है और वे श्री स्पेन्सर के गुरु रूपमें ईश्वर द्वारा नियुक्त हैं। आगे चलकर, कठिन साधनाके बाद, अहुरमज्दका (ईश्वरका पारसी नाम) निर्णय हुआ कि उनके द्वारा संसारको ईश्वरीय संदेश दिया जाय।

संसार को ईश्वर का संदेश देनेके लिए मेहर बाबाको चुना गया था। उच्च कोटिके सन्त रहे मेहर बाबा। देश-विदेश में उनके हजारों भक्त हुए। उनकी दार्शनिकता पर दशकों पहले किसी बड़े नेताने एक अंगरेजी में पुस्तक भी लिखी। मैंने वह पुस्तक छठवें दशकमें पढ़ी थी, पर पुस्तक तथा लेखकका नाम स्मरण नहीं हो रहा है। संभवतः किसी चिन्तामणिकी लिखी पुस्तक है वह। अस्तु, मेहर बाबा भ्रमग्रस्त हो गये और अपने कोHighest of the high अर्थात् ईश्वर घोषित करते हुए 'गॉड स्पीक्स'

नामक एक पुस्तक भी लिखकर प्रकाशित करा दी। फिर तो वे विफल हो ही गये और अहुरमज्द ने श्री एम० के० स्पेन्सर को एक संदेश में बतलाया कि मैंने अपनी योजना बदल दी और विश्वशांति-विश्वसंपर्क भाषा विश्व-धर्म-विश्व सरकार की नयी योजना कर चुका हूँ और आपको अवतार-कार्य करनेके लिए चुन चुका हूँ। साथ ही यही भी कहा गया कि मेहर बाबा दुर्घटना में मरेंगे, जिसकी पूर्व जानकारी उन्हें नहीं हो पायगी और इसलिए उन्हें अपनी भूल का पता चल जायगा और अपनी सिद्धावस्था की विफलता का भी पता चल जायगा। पूछनेपर अहुरमज्दने यह भी बतलाया कि अमुक तिथि को वे बुला लिये जायँगे और कुछ ही दिनोंके बाद अमुक तिथिको वे फिर संसारमें जन्म लेंगे और संसारको उनसे बहुत लाभ होगा। कारण कि इस जन्मकी उनकी साधनाएं व्यर्थ तो नियमतः होंगी नहीं, दूसरे जन्म में वे उद्दीप्त होंगी ही।

कुछ बातें श्री स्पेन्सर की साधना के सम्बन्ध में। यह साधना चली मन को पूर्ण रूपेण नियन्त्रित करके मनका स्वामी बननेकी। उन्हें बार-बार मुक्ति प्राप्त करानेका आश्वासन दिया जाता रहा और बीच-बीचमें हतोत्साह करनेवाल वचन भी कहे जाते रहे। इस तरह उन्हें ऐसा प्रशिक्षित किया गया कि शुभ-अशुभ बातों से न उन्हें हर्ष हो न विषाद। साधनाका अन्तिम लक्ष्य तो पूर्णतः निःस्व होकर प्रभुके चरणों में सर्वथा समर्पित हो जाना ही था। इसके लिए उनकी सैकड़ों बार परीक्षा ली गयी और वे सफल होते चले। आदि में उनका प्रशिक्षण ऋषि राम रामके द्वारा हुआ। अपने प्रशिक्षण के क्रम में राम राम ने श्री स्पेन्सर को मेहर बाबा और महर्षि रमण के पास भी भेजा। मेहर बाबा ने उनकी साधना को और उद्दीप्त कर दिया और महर्षि रमण ने उन्हें अर्हत कोटि तक पहुँचा दिया। बादमें राम रामने उन्हें सांई बाबा को (६००वर्षों पहले के एक बगदाद के सिद्ध फकीर, जिनका स्थान आध्यात्मिक लोक के एक उपलोक में ईश्वर की कोटि का माना गया था) सौंपा। कठिन साधना चली। एक दिन साई बाबा ने उन्हें स्वयं अहुरमज्द को (ईश्वर को) सौंपा और स्वयं संसार में जन्म ले लिया। स्वयं अहुरमज्द ने उनसे 'Romance of a soul' लिखवाकर उन्हें अवतार घोषित किया। १९५४ की बात है यह।

अब यह बतलाने की चेष्टा करूँ की 'हाउ आइ फौंड गॉड' में किस विषय पर लिखा गया है और वह पुस्तक कबतक संसारको पढ़ने के लिए मिल सकेगी। कब वह मिलेगी, इसके उत्तर में तो मैं यही कह सकता हू कि पूर्णनिरस्त्रीकरण हो जानेके केवल दो-चार दिनों के भीतर उसकी चर्चा विश्वव्यापी तो हो ही जायगी, कुछ प्रतियाँ ही संसार के समक्ष प्रस्तुत की जा सकेंगी। फिर तो गीता-रामायण-बाइबिल कुरान की तरह छपकर वह बाजार में आयगी। इस पुस्तक का विषय ठीक-ठीक बतलाना कठिन है। एक उन्नत जीव के आध्यात्मिक संघर्ष की मात्र कथा ही तो वह नहीं है। उसी पुस्तक के द्वारा संसार को आवतारिक धर्म-ज्ञान देने की योजना है। यहाँ एक बात जान लेने की यह है कि इस बार परम्परा-गत रूप में अवतार कार्य न होकर आवतारिक कार्यों का प्रमाण संसार को मिल जाय, ऐसी योजना है प्रभुकी। धर्म की ऐसी कोई बात रह नही गयी है, जो अबतक कही न जा सकी हो। वैज्ञानिक साधनों से अब संसार के देश परस्पर जुड़ चुके हैं, तत्क्षण संसार के किसी कोने की घटना की सूचना किसी कोने तक पहुँच सकती है। कृष्ण-ईसा-महम्मद के समय का संसार तो यह है नहीं। अतः अखिल संसार का एक धर्म अब संभव हो गया है। धर्म भी कहीं नया या पुराना होता है? धर्म तो एक ही है—आत्मसाक्षात्कार। बाह्य विधि-विधान उसीकी उपलब्धि के लिए हैं, पर संसार का दुर्भाग्य कि बाह्य विधि-विधान को धर्म मानकर मत-भेद बढ़ा दिये गये। आत्मसाक्षात्कार जबतक नहीं हो जाता, तबतक कोई धर्म-पथपर चलने की चेष्टा ही कर सकता है, आत्मसाक्षात्कार होने पर वह स्वयं धर्म ही हो जा सकेगा। उसके लिए सारा संसार भगवान हो जाता है। यह स्थिति एक दिन तो होती है किसी की, पर इसके लिए पिछले तथा वर्तमान जन्म के तप कारण होते हैं।

पूर्ण निरस्त्रीकरण के बाद राष्ट्र संघ में 'हाउ आइ फौंड गॉड' प्रस्तुत किया जायगा। साथ ही ससार के समाचार-पत्रों में मोटे शीर्षकों के नीचे ऋषि राम राम के तथा श्री एम० के० स्पेंसर के कार्यों के विवरण छपते चलेंगे। राष्ट्रसंघ द्वारा तथ्यों की छान-बीन करने के लिए एक वृहत् समिति गठित होगी। समितिमें न केवल राज-नीतिक प्रतिनिधि होंगे अपितु विश्वविख्यात दार्शनिक-वैज्ञानिक-धार्मिक-साहित्यिक-पत्रकार आदि भी प्रतिनिधि होंगे। छान-बीन के बाद सर्वसम्मति से आवतारिक कार्य की सच्चाई की घोषणा होगी। इतने और ऐसे अकाट्य प्रमाण मिलेंगे कि समितिके एक भी सदस्य की असहमति नहीं हो सकेगी। यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि यद्यपि पूर्ण निरस्त्रीकरण की परिस्थितियों का निर्माण क्रमशः प्रभु द्वारा होता आ रहा है और होता चलेगा अप्रत्यक्ष रूप से, पर प्रत्यक्षतः यह होना है आक्रान्त के साथ ही आक्रामक के भी मिट जानेके भयसे। अतः पूर्णनिरस्त्रीकरण तो बाध्यता से होना है, न कि धार्मिक बुद्धि से। प्रत्यक्षतः यह होगा उक्त दिव्य योजना का पहला चरण, अप्रत्यक्ष बातें

तो कितनी ही हैं---Romance of a soul आदि जैसी। हाँ दिव्य योजना के अगले चरणों की कार्यान्वित धार्मिक बुद्धि से होगी। कहना अनावश्यक है कि पूर्णनिरस्त्रीकरणकी घोषणा होते ही विश्वस्तर पर एक अभूतपूर्व, आध्यात्मिक आन्दोलन छिड़ेगा, जिसकी चर्चा संसारके सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रमुखता से होती चलेगी और विश्वका जनमानस धर्म-पथकी दिशा में परिवर्तित होता चलेगा। फिर तो क्रमसे भाषा-विवाद धर्म-विवाद क्षीण होते-होते विश्वसरकार गठित हो जायगी। राष्ट्रसंघ उसका पूर्वरूप है। यों विश्व सरकार की स्थापना अभी दूर की, अगली शताब्दिके अन्त तककी, बात है, पर पूर्णनिरस्त्रीकरण तो निकट भविष्य में ही होकर रहेगा। इसके लिए न तो निश्चित तिथि बतलायी गयी है, न बतलाने की यह बात ही है, पर इस लेखक को कुछ तथ्यों के आधार पर इसी दशकमें कभी हो जानेका अनुमान है। अनुमान का आधार अहुरमज्द द्वारा श्री एम० के० स्पेन्सर को दिया गया एक सन्देश है, जिसमें कहा गया है, "It will take decades", यह संदेश १९५७ में किसी दिन मिला था। यदि 2000 ई० तक यह नहीं होना रहता तो 'Next century' इसके लिए कहा गया होता।

हाउ आइ फौंड गॉड में विश्वराजनीतिमें घटित होनेवाली घटनाओंकी पूर्वसूचना तिथिक्रम से दी जाती रही और सूचनानुसार ही घटनाएँ तथा उनके परिणाम घटित होते चले। यह कह देना आवश्यक है कि उसके जो १४०० पृष्ठ कुछ लोगों को देखने को मिले, उन में १९६२ के भारत पर चीनी आक्रमण के पहले की ही घटनाओं की पूर्व सूचना दी गयी है—पौलैण्ड की, स्वेज नहर की, कोरिया की, फारमोसा की, गोआ की, जारिंग मिशन आदि की, और इन सबके सम्बन्ध में की गयी भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य निकलीं। स्वेडेन के किंग गुस्ताव तथा वर्नार्ड शाकी मृत्यु की पूर्व सूचना दी गयी और तदनुसार ही उनकी मृत्यु हुई। मेहर बाबा की दुर्घटनाग्रस्त मृत्यु की पूर्व सूचना भी तदनुसार ही हुई। हाउ आइ फौंड गॉड के जो ६०९ पृष्ठ गुप्त रखे गये हैं, उनमें यत्र-तत्र १९६२ के बीच आक्रमण से लेकर पूर्णनिरस्त्रीकरण होने तक जो घटनाएँ हुईं और होती चलेंगी उनकी पूर्व सूचना दी गयी होगी यह तो मानना ही पड़ता है। राजनीतिक कारणों से ६०० पृष्ठों की गोपनीयता आवश्यक है, यह तो कोई भी समझ सकता है। १४०० पृष्ठों में यत्र-तत्र जो राजनीतिक घटनाओं की पूर्व सूचना दी गयी, उनकी सिद्ध प्रामाणिकता से शेष ६०० पृष्ठों में यत्र-तत्र की गयी राजनीतिक भविष्यवाणियों को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए ही कुछ लोगों को वे १४०० पृष्ठ देखने को मिले। समय पर कितने लोगों द्वारा उक्त १४०० पृष्ठ ऊपर निर्देशित समिति के समक्ष प्रस्तुत भी किये जा सकेंगे। अभिप्राय कथन का यह कि इस दिव्य योजना की प्रामाणिकता पूरी तरह से सिद्ध हो सके, इसका पूरा प्रबन्ध भी योजनानुसार ही हुआ है। यद्यपि १९६२ के चीनी आक्रमण से लेकर इधर की घटनाओं की पूर्व सूचना गुप्त रखे गये ६०० पृष्ठों में ही यत्र तत्र दी गयी हैं, पर हाउ आइ फौंड गॉड के १४०० पृष्ठों में यत्र-तत्र कई बार सबल शब्दों में विश्वशांति-विश्व संपर्क भाषा-विश्व धर्म-विश्व सरकार की घोषणा दुहरायी गयी है।

विश्वधर्म-विश्वसंपर्क भाषा और विश्व सरकार की दिव्य योजना में कतिपय दिव्यात्माओं ने स्वेच्छया या प्रभु के आदेश से संसार में जन्म भी लिए हैं। ये सभी साधना-रत हैं। पूर्णनिरस्त्रीकरण के बाद उनका प्रत्यक्ष कार्य आरम्भ होगा। कौन कहाँ हैं, यह सूचना संसार को उक्त ६०० पृष्ठों से ही मिलेगी। अबतक जिन दिव्यात्माओं के जन्म ग्रहण करने की बात बतलायी गयी है, उनके केवल नाम ही बतलाये गये हैं, स्थान नहीं। स्थानकी गोपनीयता आवश्यक है, यह तो कोई भी समझ सकता है। और फिर नाम प्रकट कर देना भी आवश्यक है, यह भी समझा जा सकता है। म० गांधी, बगदाद के साईं बाबा, शिरडी के साईं बाबा, मेहर बाबा, जमशेद नौसेरवांजी (ताता नहीं, दूसरे) और अथरी के जन्म ग्रहण करने की बात तथा तिथियाँ भी बतलायी जा चुकी हैं। इन सबकी आयु इस समय २५ से २९ वर्षके बीच है। यह मुझे How I Found God से पता चला था। एक अन्य सूत्र द्वारा स्वामी विवेकानन्द के जन्मग्रहण करने की सूचना भी मुझे मिली थी। How I Found God में यह भी कहा जा चुका है कि कुछ अन्य दिव्यात्माओं को भी संसार में भेजा जायगा।

कुछ ईसाई हैं जो ईसा के प्रकट होने की घोषणा कर रहे हैं। उनके विश्वासानुसार मनुष्य जाति के उद्धारक मात्र ईसा हैं। ईसाई पुनर्जन्म नहीं मानते। अतः जैसे कब्र से ईसा जी उठे थे, वैसे ही वे लोग ईसा के प्रकट होने की कल्पना करें तो यह आलोच्य बात नहीं है। अपना-अपना विश्वास! संभवतः श्री रामनन्दन मिश्रजी भी ईसा के अवतरित होने की बात कहते हैं। यदि ऐसी बात है तो निश्चय ही How I Found God के गुप्त रखे गये ६०० पृष्ठों में कहीं किसी पृष्ठ पर यह सूचित कर ही दिया गया होगा। इस लेखक को इस सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि दिव्यात्मा कोई भी हो, संसार में जन्म लेकर ही प्रत्यक्ष कार्यक्षेत्र में उतरेगा। अप्रत्यक्ष रूप से तो सदा दिव्यात्मा सक्रिय रहा ही करते हैं। अतः यदि ईसा मसीह भी जन्म ले चुके हों तो कोई आश्चर्य नहीं। ईसा पुनर्जन्म मानते थे अवश्य, ईसाई लोग भले न

मानें। अब्राहम के पहले भी अपने होने की बात ईसा ने कही थी—"Before Abraham was, I am" John प्रकरण में स्पष्टतः कहा है ईसा ने, "Verily, verily, I say unto thee, except a man be born again, he cannot see the kingdom of God." यह बात भी है कि ऐसे वाक्यों की व्याख्या ईसाई लोग दूसरे ढंग से किया करते है। वैसे ही मुसलमान कुरान में कई जगह आये इस वाक्यका, "खुदाने तुम्हें मिट्टी से पैदा किया, वही तुम्हे मिट्टी में मिलाएगा और फिर वह तुम्हें मिट्टीसे जिंदा जिलाएगा" अर्थ कयामत से जोड़ते है, जो वस्तुतः पुनर्जन्म से जोड़ा जाना चाहिए। बातें ये है द्वयर्थक अवश्य। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'हाउ आइ फौंड गॉड' कौन-सा धर्म संसार को देगा। इस लेखक की मन्यता इतनी ही है कि यह ग्रंथ संसार को धर्म का प्रमाण देगा और विश्व धर्म तथा विश्व-सरकार की भूमिका तैयार करेगा।

अब इस दिव्य योजनाके सम्बन्धमें यह लेखक कहना चाहता है कि लगभग दो हजार वर्ष पहले ईसाने इसका संकेत आलंकारिक भाषामें किया है। बाइबिलके हिन्दी संस्करणसे नीचेके उद्धरण दिये जा रहे हैं—नया नियम New testament) प्रकरण मत्ती के २४ के वाक्य ३ में ईसा से उनके चेलों ने पूछा :—

"हम से कह कि ये बातें कब होंगी ? और तेरे आने का और युग के अन्त का क्या चिह्न होगा ?" वाक्य ६ में जवाब है :—

"तुम लड़ाइयों की चर्चा सुनोगे, देखो घबड़ा न जाना क्योंकि इनका होना अवश्य है, परन्तु उस समय अन्त न होगा।' वाक्य २७ देखा जाय—

'जैसे बिजुली पूर्व से निकल कर पश्चिम तक चमकती जाती है, वैसा ही मनुष्य के पुत्र का चिह्न आकाश में दिखाई देगा और तब पृथ्वी के सब कुलों के लोग छाती पीटेंगे; और मनुष्य के पुत्र को बड़ी सामर्थ और ऐश्वर्य के साथ आकाश के बादलों पर आते देखेंगे।" वाक्य ३१ देखा जाय—

'और वह तुरही के बड़े शब्द के साथ अपने दूतों को भेजेगा, और वे आकाश के इस छोर से उस छोर तक, चारों दिशा से उसके चुने हुओं को इकठ्ठे करेंगे।"

उक्त संकेतों का इस दिव्य योजनासे सम्बन्ध है। लड़ाइयाँ हो ही रही हैं। 'घबड़ा ना जाना' से अभिप्राय यह कि विश्वयुद्ध नहीं होगा और अन्त नहीं होगा। 'तेरे आने का' अर्थ यदि अवतार के आनेसे सम्बन्ध रखता है तो अवतार आया ही। यदि स्वयं ईसाके आनेकी यह सूचना हो तो वह भी सत्य माना जायगा, क्योंकि अहुर मज्दने कह ही दिया है कि अन्य दिव्यात्मा भी आयेंगे। 'जैसे बिजुली पूर्वसे निकल कर पश्चिम तक चमकती जाती है' का आशय यह है कि पूर्व देशमें जो अवतार होगा, उसका नाम विद्युत-सा पश्चिम तक जायगा। मनुष्य का पुत्र' का अर्थ अवतार है ही। 'चिह्न आकाश में दिखाई देगा' से संकेत इस बातकी ओर है कि अवतार सदेह तो रहेगा नहीं, उसका नाम वातावरण में गूँजेगा। 'मनुष्यके पुत्र की बड़ी सामर्थ और ऐश्वर्य के साथ आकाश के बादलों पर आते देखेंगे' का तात्पर्य यह कि अवतारकी सच्चाईकी घोषणा रेडियो ब्राडकस्ट द्वारा होगी। 'और वह तुरहीके बड़े शब्द के साथ अपने दूतों को भेजेगा, और वे आकाश के इस छोर से उस छोर तक, चारों दिशा से उसके चुने हुओं को इठ्ठे करेंगे' का आशय यह है कि न केवल युगावतार श्री एम० के० स्पेन्सरके नाम तथा उनके द्वारा प्राप्त 'How I Found God' की ही घोषणा दूरभाष द्वारा होगी, अपितु अन्य सभी अवतरित दिव्यात्माओंकी भी घोषणा होगी, जो संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें उस समय रह रहे होंगे। वे एकत्र होंगे और अपना कार्यक्रम निर्धारित करेंगे। 'और तब पृथ्वी के सब कुलों के लोग छाती पीटेंगे' का आशय यह है कि संसारकी सभी जातियाँ अपनी भौतिकवादिता पर पश्चाताप करेंगी।

वाक्य १४ है, "राज्य का यह सुसमाचार सारे जगत में प्रचार किया जायगा, कि सब जातियोंकी गवाही हो, तब अन्त आ जाएगा"। इसका आशय यह कि कई जातियोंमें दिव्यात्माओंने जन्म लिया है तथा कई जातियोंके कुछ ऐसे लोगोंके पास 'रोमाँस ऑफ ए सोल' पहुँचा हो, जो इस योजनासे पहले ही अवगत होनेका साक्ष्य देनेवाले होंगे।

स्पष्ट किया जा चुका है ऊपर कि पूर्णनिरस्त्रीकरणके बाद ही व्यापक रूपसे यह सत्य, दिव्य योजनाका सत्य, संसार के समक्ष आयगा। फिर तो युगान्त और नवयुग आरम्भ एक विन्दु पर होंगे ही।

"प्रत्येक देश के लोगों को यह नारा लगाना चाहिए —'युद्ध नहीं, हम शान्ति चाहते हैं' विश्व के प्रत्येक देश के हर शहर में शान्ति ध्वज लहराता रहे। लोग शान्ति की अनवरत चर्चाएँ करते रहें ताकिशान्ति की तरंग का निर्माण हो सके जिससे जाति और राष्ट्र की श्रेष्ठता का मूर्खतापूर्ण नारा लगाने वाले राजनीतिज्ञों पर पड़नेवाले विरोधी विचारों को रोका जा सके ॐ तत्सत्। तत्त्वम् असि।"

घोषणा पत्र

घोषणा का विहित प्रपत्र — प्रपत्र संख्या—५

जिला पदाधिकारी, सारण के न्यायालय में

मैं, गंगा देवी, घोषित करती हूँ कि 'विवेक शिखा' प्रपत्र, जो जनता प्रेस, पटना से मुद्रित होगा, की प्रकाशक हूँ तथा उक्त पत्र के सम्बन्ध में दिये गये तथ्य मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

१. पत्र का नाम—विवेक शिखा

२. भाषा जिसमें प्रकाशित होगा—हिन्दी

३. प्रकाशन की कालावधि—

(अ) दैनिक या साप्ताहिक, पाक्षिक अथवा अन्य—मासिक

(ब) यदि दैनिक हो तो लिखिए कि प्रातः पत्र है अथवा संध्या कालीन— ×

(स) यदि दैनिक के आलावा कोई अन्य पत्र हो तो उसके प्रकाशित होने की तिथि अथवा दिन लिखिए—हर महीने की ८ तारीख को।

४. पत्र के एक प्रति की खुदरा बिक्री का मूल्य—२-०० (दो रुपये मात्र)

(अ) यदि पत्र निःशुल्क वितरण के लिए है तो कृपया लिखिए कि निःशुल्क वितरण के लिए है—कुछ प्रतियाँ निःशुल्क भी वितरित होंगी।

(ब) यदि सिर्फ वार्षिक चन्दा हो और खुदरा बिक्री नहीं हो तो इसका उल्लेख कीजिए— ×

५. प्रकाशक का नाम—श्रीमती गंगा देवी
राष्ट्रीयता—भारतीय

६. प्रकाशन का स्थान—छपरा

७. मुद्रक का नाम—श्री श्रीकान्त लाभ
राष्ट्रीयता—भारतीय
पता—जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४

८. जहाँ मुद्रण कार्य होगा उस मुद्रणालय का नाम तथा स्थान का संक्षिप्त विवरण जहाँ मुद्रणालय अवस्थित हो—जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४

९. सम्पादक का नाम—डॉ० केदारनाथ लाभ (मानद संपादक)
राष्ट्रीयता—भारतीय
पता—रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

१०. मालिक का नाम—श्रीमती गंगा देवी, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

११. कृपया उल्लेख कीजिए कि यह घोषणा पत्र निम्नांकित के सम्बन्ध में है

(अ) नया पत्र—नया पत्र

(ब) वर्तमान पत्र— ×

(स) यदि घोषणा पत्र संख्या (अ) के अन्तर्गत हो तो नवीन घोषणा दाखिल करने का कारण—परमहंस श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द की भावधारा के प्रचारार्थ।

ह० प्रकाशक
ह० गंगा देवी
दिनांक ८-५-८२

ह० सम्पादक (बड़े अक्षरों में)
ह० केदारनाथ लाभ

मेरे समक्ष श्रीमती गंगा देवी एवं श्री केदारनाथ लाभ ने हस्ताक्षर किया जिन्हें मैं पहचानता हूँ।

शिवाजी राव आयदे
अधिवक्ता ८-५-८२

प्रतिलिपि—(१) निबन्धक, भारतीय समाचार पत्र।

टालस्टाय मार्ग, वन्दना बिल्डिंग, नई दिल्ली—१ को सूचनार्थ एवं उचित कार्रवाई हेतु।

"मनुष्य के रूप में जन्म लेने का विरल विशिष्ट अधिकार पाने पर भी जो व्यक्ति इस जीवन में ईश्वर-लाभ करने में असमर्थ है, उसका जन्म लेना व्यर्थ है। नाव पानी में रह सकती है, किन्तु पानी को नाव में नहीं रहना चाहिए।.....अपने भीतर भक्ति रखो और समस्त चतुराइयों एवं छलों को त्याग दो। जो उद्यम-धन्धों में लगे हैं, यथा कार्यालय के कार्य या व्यापार में, उन्हें भी सत्य पर दृढ़ रहना चाहिए। सत्यपरायणता ही इस कलियुग की तपस्या है।

—श्रीरामकृष्ण

मंगल कामनाओं के साथ :—

"मंगला मेटल्स"

मेटल कन्टेनर के निर्माता एवं जेनरल ऑर्डर सप्लायर्स

ए २, पत्रकार नगर,
कंकड़ बाग कालोनी, पटना—२०

He is born to no purpose who, having the rare privilege of being born a man, is unable to realise God in this life. A boat may stay in water, but water should not stay in the boat. An aspirant may live in the world but the world should not live in him.....Have Bhakti within, and give up all cunning and deceit. Those who are engaged in business, such as work in office or trade, should also stick to truth. Truthness is the Tapasya (austerity) of this age of Kali.

—SRI RAMAKRISHANA

With the best comliments

MANGALA METALS

Manufacturer of Metal Container and

General Order Suppliers

A 2, Patrakar Nagar,
Kankarbagh Colony, PATNA—20

सच्चा हिन्दू

मेरी बात पर ध्यान दो, केवल तभी तुम वास्तव में हिन्दू कहलाने योग्य होगे, जब "हिन्दू" शब्द को सुनते ही तुम्हारे अन्दर बिजली दौड़ने लग जायगी। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू कहला सकोगे, जब तुम किसी भी प्रान्त के, कोई भी भाषा बोलनेवाले प्रत्येक हिन्दू-संज्ञक व्यक्ति को एकदम अपना सगा और स्नेही समझने लगोगे। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू माने जाओगे, जब किसी भी हिन्दू कहलानेवाले का दुःख तुम्हारे हृदय में तीर की तरह आकर चुभेगा। मानो तुम्हारा अपना लड़का ही विपत्ति में पड़ गया हो! केवल तभी तुम यथार्थतः 'हिन्दू' नाम के योग्य होगे, जब तुम उनके लिए समस्त अत्याचार और उत्पीड़न सहने के लिए तैयार रहोगे।

× × × ×

मेरी बात पर ध्यान दो। यदि तुम देश की भलाई करना चाहते हो तो तुम में से प्रत्येक को गुरु गोबिन्द सिंह बनना पड़ेगा। तुम्हें अपने देशवासियों में भले ही हजारों दोष दिखायी दें, पर तुम उनकी रग-रग में बहनेवाले हिन्दू रक्त की ओर ध्यान दो। तुम्ह पहले इन स्वजातीय नर-रूप देवताओं की पूजा करनी होगी, भले ही वे तुम्हारी बुराई के लिए लाख चेष्टा किया करें। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति यदि तुम पर अभिशाप और निन्दा की बौछार करे तो भी तुम इनके प्रति प्रेमपूर्ण वाणी का ही प्रयोग करो। यदि ये तुम्हें त्याग दें, पैरों से ठुकरा दें तो तुम उसी वीर केसरी गोविन्द सिंह की भाँति समाज से दूर जाकर नीरव भाव से मौत की राह देखो। जो ऐसा कर सकता है, वही सच्चा हिन्दू कहलाने का अधिकारी है। हमें अपने सामने सदा इसी प्रकार का आदर्श उपस्थित रखना होगा। पारस्परिक विरोध भाव को भूलकर चारो ओर प्रेम का प्रवाह बहाना होगा।

आत्म विश्वास

आत्मविश्वासहीनता का मतलब है ईश्वर में अविश्वास। क्या तुम्हें विश्वास है कि वही अनन्त मंगलमय विधाता तुम्हारे भीतर से काम कर रहा है? यदि तुम ऐसा विश्वास करो कि वही सर्वव्यापी अन्तर्यामी प्रत्येक अणु परमाणु में—तुम्हारे शरीर, मन और आत्मा में ओत-प्रोत है, तो फिर क्या तुम कभी उत्साह से वंचित रह सकते हो? मैं पानी का एक छोटा-सा बुलबुला हो सकता हूँ, और तुम एक पर्वताकार तरंग; तो इसमे क्या? वह अनन्त समुद्र जैसा तुम्हारे लिए, वैसा ही मेरे लिए भी आश्रय है। उस जीवन, शक्ति और आध्यात्मिकता के अमीम सागर पर जैसा तुम्हारा, वैसा ही मेरा भी अधिकार है। मेरे जन्म से ही, मुझमें जीवन होने से ही, यह प्रमाणित हो रहा है कि तुम्हारे समान, चाहे तुम पर्वताकार तरंग ही क्यों न हो, मैं भी उसी अनन्त जीवन, अनन्त शिव और अनन्त शक्ति के साथ नित्य संयुक्त हूँ। अतएव, भाइयो! तुम अपनी सन्तानों को उनके जन्म-काल से ही इस महान्, जीवनप्रद, उच्च और उदात्त तत्व की शिक्षा देना शुरू कर दो।

—स्वामी विवेकानन्द

(रामकृष्ण मिशन, नागपुर द्वारा प्रकाशित विवेकानन्द साहित्य, खंड ५ से सानुमति-साभार)

श्रीमती गंगादेवी द्वारा रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा से प्रकाशित एवं श्रीकान्त लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४ में मुद्रित :